पताः

जयमल सिंह, एडवोकेट
कोठी नं० 332, सैक्टर 15-A
हिसार 125001 (हरियाणा)
✆ 01662-244725

सर्वाधिकार सुरक्षित (जून, २००४)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी भी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

द्वितीय संस्करण, जनवरी, २००७

मूल्य : 20/- रूपये

मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म

परम संत कैप्टन लाल चन्द जी महाराज द्वारा रचित

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	
	भूमिका	
	भाग - 1 कर्त्तव्य और धर्म	
1.	बच्चों पर संस्कार	1
2.	युवक–युवतियों का कर्त्तव्य और धर्म	4
3.	वद्ध पुरूष व स्त्रियों का कर्त्तव्य और धर्म	7
4.	अध्यापकों का कर्त्तव्य और धर्म	12
5.	शिष्यों का कर्त्तव्य और धर्म	16
6.	आध्यात्मिक महात्माओं की पहचान व समाज के प्रति उनका कर्त्तव्य और धर्म	25
7.	राजनेताओं का समाज व देश के प्रति कर्त्तव्य और धर्म	35
8.	वैद्य, हकीम और डाक्टरों का कर्त्तव्य और धर्म	43
9.	वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य और धर्म	49
10.	पुलिस का कर्त्तव्य और धर्म	52
11.	व्यापारियों का कर्त्तव्य और धर्म	56
12.	देश के विभिन्न वर्गो का समाज के प्रति कर्त्तव्य और धर्म	61
13.	मानव–जाति का समाज के प्रति कर्त्तव्य और धर्म	64
14.	धर्म, विश्वास और अनुभव का विषय है	73
15.	कर्त्तव्य और धर्म के प्रति मेरा अपना अनुभव	79
16.	लोक–परलोक का सफर (धर्म)	87
17.	खुश रहने के कुछ सुनहरी सिद्धान्त	95
	भाग - 2 आत्मिक अनुभूति	
18.	योग	98
19.	प्राण–योग	104
20.	राधास्वामी–योग	109
21.	अन्तिम मंजिल का भेद	115
22.	अध्यात्म ज्ञान का सार	125
23.	सारांश	130

।। राधास्वामी ।।

प्राक्कथन

इस संसार में हर मनुष्य सुखी रहना चाहता है, परन्तु वह सुखी रहने का रहस्य नहीं जानता। यही कारण है कि सभी भौतिक सुविधाओं के होने पर भी आज का आदमी तनावपूर्ण जिन्दगी जी रहा है। इस दुनिया की भागदौड़ में वह अपने कर्त्तव्य को भुला बैठा है और यही उसके दुःखों का मूल कारण है। यदि आदमी अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहे तो वह काफी हद तक इस तनावग्रस्त जिन्दगी से राहत पा सकता है। जैसे – "Be attention, Leave the tension".

कितना अज्ञानी है यह मनुष्य जो इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी इसे व्यर्थ ही गंवा देता है। जिस मनुष्य चोले को पाने के लिए देवता तक तरसते हैं, उसे यह अज्ञानता में बर्बाद कर देता है और जब उसे होश आती है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। जैसे –

''बड़े भाग मानुष तन पाया, सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा।''

मेरा यह कोई पुण्य कर्मों का ही फल रहा होगा कि धार्मिक रूचि होने के कारण शुरू से ही महापुरूषों का जीवन मेरे लिए आदर्श रहा है। प्रारम्भ में अपने घर पर ही अपने माता–पिता के जीवन से प्रभावित रही, फिर मुझे अच्छे शिक्षा गुरू मिले जिनसे मैने अच्छे–२ संस्कार ग्रहण किए और आखिर जब घूमते–२ मेरा संयोग धर्म–कर्म की साक्षात् मूर्ति हजूर महाराज कैप्टन लालचन्द जी से हुआ तो मेरा जीवन कैसे धीरे–२ बदलता चला गया, मुझे पता ही नहीं चला। इनके सम्पर्क में आते ही मेरे अवगुणों की कालिख उसी प्रकार दूर होती चली गई जैसे सूर्य उदय होने पर अन्धकार भाग जाता है। कई बार तो मुझे ऐसा महसूस होता है कि धर्म के ये साक्षात् अवतार मेरे लिए ही अवतरित हुए हैं, क्योंकि जब इन्होंने 1956 में अपने गुरू जी से दीक्षा ली थी तो उसी वर्ष मेरा जन्म हुआ था। यह शान्ति के वह अथाह सागर हैं, जिसमें से हर समय प्रेममयी शीतलता की लहरें निकलती रहती हैं और जो कोई इनके सम्पर्क में आता है, वह इनसे प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता। जैसे पानी के पास बैठने से ठण्डक व अग्नि के पास बैठने से ताप अपने आप मिल जाता है, उसी प्रकार इनके निकट रहने पर मनुष्य को शान्ति अनायास ही मिल जाती है। इनके पास वह चुम्बकीय शक्ति है जो ज्ञान–पिपासुओं को अपनी ओर खींच लेती है। बाह्य आडम्बरों से दूर, सादगी से भरपूर, ज्ञान की यह जीती जागती तस्वीर है। सच तो यह है कि मेरे पास इनके गुणों का बखान करने के लिए शब्द ही नहीं है। जैसे कबीर ने कहा है –

पर्वत की स्याही करूं घोल समुद्र माहि।
धरती का कागज करूं गुरू स्तुति लिखा न जाई।।

पुस्तकों की श्रंखला में प्रस्तुत यह पुस्तक ''मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म'' वह बहुमूल्य हीरा है जिसके देदीप्यमान प्रकाश से अज्ञान रूपी अन्धकार में भटके हुए लोगों का जीवन कान्तिमान् हो उठता है। इस पुस्तक में अपने कर्त्तव्य रूपी राह को भूले हुए मनुष्यों को अपने कर्त्तव्य पथ पर चलने का निर्देशन किया गया है। यह पुस्तक कर्त्तव्य – मार्ग पर चलने वालों के लिए एक उत्तम सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर मनुष्य धीरे–२ अपनी मंजिल तक जा सकता है। यह कर्त्तव्य विमुख लोगों के लिए वह दवा है जिसे पीकर मनुष्य सजग होकर पुनः जीवित हो उठता है। यानी उसके जीवन में एक नई चेतनता आ जाती है। आज अपने राह से भटके लोगों के लिए यह एक उत्तम संजीवनी बूटी है। जो भी इसका सेवन करेगा, वह अवश्य इससे लाभान्वित

होगा। यही इस पुस्तक को लिखने का प्रयोजन है।

इसके साथ ही साक्षात् कुबेर का रूप बने हुए मेरे स्नेही बन्धु आचार्य सुपरिटैन्डेण्ड इंजिनियर जिले सिंह सांगवान व जे. सी. गुप्ता जी भी अविस्मरणीय ही हैं, क्योंकि उन्हीं के आर्थिक योगदान से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। अतः मैं तहदिल से इनका धन्यवाद करती हूँ।

डॉ० कमला देवी
संस्कत प्राध्यापिका
एम.एम.कॉलिज,फतेहाबाद
दूरभाषः 01667-225520

भूमिका

धर्म – कर्म का कुछ विशेष संस्कार न होने पर भी भाग्यवश किसी घटना के कारण मुझे सन् 1956 में अपने गुरू पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के समीप में बैठने से पहले ही दिन उस राम नाम की अनुभूति हो गई, जिसका अनुभव मैं अभी तक करता आ रहा हूं। सेना में नौकर होने के कारण जब–२ मुझे छुट्टी मिलती थी, मैं अपने गुरू के दर्शनार्थ होशियारपुर जाता रहता था और वह हर बार मुझे कोई न कोई नई बात बताते थे। इसी तरह एक बार उन्होंने मुझे गुरूवाई पर ऐसा सत्संग दिया कि मुझे गुरू बनने का ख्याल स्वपन में भी नहीं रहा अर्थात् गुरू बनने की मुझे भूख ही नहीं रही। परन्तु उनका आदेश था कि मैं इस नाम का अनुभव करके बिना मुआवजे के इस ज्ञान को दुखी लोगों में बांटता रहूं, जिसका पालन मैं सन् 1962 से करता आ रहा हूं। मैंने गांव–२ जाकर इस ज्ञान का प्रचार किया, परन्तु लोगों ने मेरे सत्संग को समझने का प्रयास ही नहीं किया। आखिर 1992-93 में डॉ० कमला जो एम.एम. कॉलेज, फतेहाबाद में प्राध्यापिका हैं, वह मेरे सम्पर्क में आई। इसने मेरे सत्संगों को समझा और इन्हें अमूल्य जानकर विधिवत् इनका रिकार्ड करना शुरू कर दिया। मेरे सम्पर्क में रहते–२ ही इसे अनायास इस नाम की अनुभूति हो गई और इसके बाद इसकी मेरे प्रति भक्ति, निष्ठा, निश्छल प्रेम व सर्वस्व त्याग, तप को देखकर मुझे इसे मजबूरन शिष्या के रूप में स्वीकार करना पड़ा। वैसे गुरू से ज्ञान मिलने के बाद मैंने किसी को दीक्षा नहीं दी और न ही कोई आश्रम या शिष्य बनाए। परन्तु इसके प्रेम में बहुत शक्ति है। दूसरा यह प्रकाश व शब्द की अनुभवी है। इसलिए इसके प्रेमपूर्ण आग्रह से मुझे ये पुस्तकें लिखनी

पड़ी, जिनका मैंने कभी विचार ही नहीं किया था।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने का मेरा यही उद्देश्य है कि जिस समाज में मनुष्य जन्म लेता है, पल कर बड़ा होता है और जिससे उसे शिक्षा व योग्यता प्राप्त होती है, उस समाज के प्रति इस मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म क्या है? मैंने अपने अनुभव, समझ व योग्यतानुसार विभिन्न वर्गों के मनुष्यों को उनका कर्त्तव्य व धर्म बताकर अन्त में आत्मिक अनुभूति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से किसी के जीवन में सुधार आ जाता है या उसे कोई लाभ हो जाता है तो मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूंगा। वैसे इस पुस्तक को लिखने में मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है। मैंने तो इसमें वह सच्चाई बताने की कोशिश की है, जिसका अनुभव मैंने स्वयं किया है। आशा है इस पुस्तक को पढ़ने से लोगों का कुछ न कुछ सुधार अवश्य होगा।

आपका हितैषी,
कैप्टन लालचन्द
गांव दांदू,जिला चुरू (राजस्थान)
दूरभाषः 01562-283121, 283521

भाग - I

(1)

बच्चों पर संस्कार

अध्यात्म व तत्त्व ज्ञान की दष्टि से मनुष्य का जीवन चार तत्वों की मिलौनी से पूरा बनता है। बीज रूप में सुरत, आत्मा, मन और शरीर यह चार तत्व की मिलौनी का नाम मनुष्य है। जन्म से यह तत्त्व बीज रूप में होते हैं। इनका विकास होता रहता है।

यह लोक संकल्पमय है। वासना, इच्छा व विचारों का लोक है। मां–बाप को यदि संकल्प शक्ति का ज्ञान होगा तब वे जैसी सन्तान की चाह या इच्छा व विचार मन में लेकर जैसी सन्तान चाहे पैदा कर सकते हैं। इस विषय पर मैंने ''सुखी जीवन का रहस्य'' नाम की पुस्तक में अपना अनुभव लिखा है।

बच्चा पैदा होने पर उसके मन पर बाहरी जगत के प्रभाव पड़ते हैं। जैसे बच्चे के पैदा होने पर जो दाई, नर्स या डॉक्टर हाथ लगायेगा व देखेगा, उसका प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। फिर बच्चे को जो घुटी देगा, उसका प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। यह विज्ञान की बात है कि हर मनुष्य एक रेडियो स्टेशन है। उसके अन्दर जो विचार भाव हैं, वे हर समय बाहर निकलते रहते हैं और जो उसके सम्पर्क में आता है, उस पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के दफतर में काम करने वाले एक सज्जन के घर लड़की पैदा हुई। वह लड़की रोती रहती थी। आखिर तीन दिन के बाद उसके पिता ने यह घटना गुरू जी को बताई। उन्होंने पूछताछ की तो पता चला कि जो दाई बच्चा पैदा करवाने आई थी, उसका भाई दो चार दिन पहले मर गया था। वह दुखी थी। उसके दुख व रोने की विकिरण धारा ने उस बच्ची पर प्रभाव

डाला और वह बच्ची लगातार तीन दिन तक रोती रही। गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी इस विषय के अनुभवी थे। अतः उससे फूल मंगवा कर उसको प्रसाद बना दिया और बताया कि इन फूलों को बच्ची के माथे पर कुछ समय तक रखना, वह ठीक हो जायेगी। ऐसा ही हुआ और कुछ ही समय में बच्ची ने रोना बन्द कर दिया। इसी प्रकार मैंने खुद ने भी ऐसे कई अनुभव किए हैं।

बच्चा पैदा होने के बाद कुछ समय तक तो अपने आप से खेलता रहता है। फिर कुछ समय तक वह अपनी मां से प्रेम करता है। उसके बाद वह दूसरे बच्चों से प्रेम करता है और जैसी संगत करता है, अपने साथियों से संस्कार लेता रहता है। उसके बाद वह अध्यापकों से संस्कार ग्रहण करता रहता है पहले तो लड़के–लड़कियां कामांग से 18 व 13 वर्ष की आयु में आकर्षित होते थे, परन्तु अब आधुनिक मीडिया टी.वी., अखबार व अन्य बाहर के प्रभावों से इस विषय में आयु 16 व 11 वर्ष तक पहुंच गई है। यह जीवन सब संस्कारों का है। अतः बच्चों को जैसे अच्छे या बुरे संस्कार दिए जाते हैं, वे वैसे ही बन जाते हैं। पहला काम तो घर से ही शुरू होता है। माता–पिता और परिवार से जैसे संस्कार मिलते हैं, यह विशेष प्रभाव रखते हैं। दूसरा जैसी संगत होती है और अध्यापक होते हैं उनसे संस्कार लेते हैं। वैसे तो बच्चे जो कुछ कर्म लेकर आते हैं, वैसा ही बनने को मजबूर हैं। परन्तु ये संस्कार हानिकारक हैं। हमें उनको बढ़ने के व उन्नति करने के सुन्दर संस्कार देने हैं। गिरावट के बहुत से और भी कारण हो सकते हैं, परन्तु सबसे बड़ा कारण, जो मेरे अनुभव में आया है, वह शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की गिरावट है। मन से विषय भोगना और शरीर से विषय भोगना मनुष्य जीवन के रत्न को खोना है। मनुष्य में यही एक जीवन शक्ति है, जो उसको जीवन के हर क्षेत्र में सफल बनाती है। शारीरिक विषय भोग बहुत ही सस्ता व क्षणिक आनन्द है और वह भी केवल दो या तीन मिनट का।

लोगों को इस जैसा दूसरा आनन्द नहीं सूझता है। अतः इसका उपचार मेरे अनुभव के अनुसार ध्यान योग है।

यदि नौंवी–दसवीं से हम लड़के–लड़कियों को शिक्षा के साथ ही 15 या 20 मिनट के लिए ध्यान योग स्कूलों में सिखाना शुरू कर दें तो यह विषय–भोग का आनन्द उस ध्यान के आनन्द से बहुत नीचे रह जाता है। तब विषय भोग केवल सन्तान–उत्पत्ति के लिए ही भोगा जायेगा और जिस आनन्द या स्वाद के चक्कर में आज का मानव पागल होकर अपनी जीवन शक्ति बरबाद करके जीवन ही दुख में जी रहा है, तब यह बात नहीं होगी। काम के उपराम होने का सबसे आसान और सहज रास्ता ध्यान का है। पहले भी गुरूकुलों में यह तरीका रहा है, परन्तु यह व्यवस्था तब तक केवल लड़कों के लिए ही थी, लड़कियों के लिए नहीं। अतः इसमें विशेष सफलता नहीं मिल सकी। ध्यान का तरीका मन की एकाग्रता है। इससे सब प्रकार की कमजोरी दूर होती जायेगी और लड़के–लड़कियां एक नए सुखात्मक जीवन का अनुभव करते हुए परम आनन्द और परम शान्ति का अनुभव करने के अधिकारी बनते जायेंगे मनुष्य के मन में बहुत शक्ति है। यह शक्ति मनुष्य के विश्वास और ध्यान से सहज में इतनी बढ़ जाती है कि वह असम्भव को सम्भव बना देती है। आज का विज्ञान, ध्यान का फल है और प्रेम यदि ध्यान के साथ हो तो कहना ही क्या है? अध्यात्म ज्ञान में भी इसी ''ध्यान'' और ''प्रेम'' को हमारे ऋषि–मुनियों ने प्रयोग में लिया है और उनके अपने अनुभव से यह शास्त्र भरे हुए हैं। इसलिए बच्चों को शुरू से ही अच्छे संस्कार देने चाहिए।

(2)

युवक व युवतियों का कर्त्तव्य और धर्म

बाल्यावस्था के पश्चात् युवावस्था आती है और यही वह अवस्था है जिसमें यदि वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत रहे तो वह उन्नति के शिखर तक पहुंच सकता है और अपने आपको योग्य व चरित्रवान् बना सकता है और यदि वह इस अवस्था में अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गलत रास्ते पर चल पड़ता है तो जल्दी ही उसका पतन हो जाता है और उसका जीवन बर्बाद हो जाता है। हमारी यह वही भारतभूमि है जिसमें ऐसे–२ वीर उत्पन्न हुए जिन्होंने हंसते–२ इस देश के लिए कुर्बानी दे दी और जिनकी पुण्य तिथि आज भी मनाई जाती है। इसी धरती पर ऐसे–२ समाज सुधारक व महान् विभूतियां हुई हैं जो आज भी अपने नाम के साथ जीवित हैं। और ऐसी–२ वीरांगनाए व पतिव्रता स्त्रियां हुई हैं, जिनका नाम इतिहास के सुनहरे पन्नों पर अंकित है। परन्तु आज के नवयुवक व युवतियों में कोई नई उमंग, उत्साह व कुछ नया कार्य कर दिखाने का हौंसला नजर ही नहीं आता। वह तो युवा होते ही बस या तो लड़कियों के पीछे भागता नजर आता है या नशे का आदी हो जाता है तथा फिर बुरी संगत में पड़कर अपने माता–पिता का और अपने शिक्षा गुरूओं का अपमान करना अपना बड़प्पन समझता है। जबकि हमारे देश का विकास, उन्नति व भविष्य इन्हीं नवयुवक व युवतियों के कन्धों पर आधारित है।

अतः मेरी समझ के अनुसार इनका सुधार बीज रूप से ही होना चाहिए। आज के ये जितने भी समाज सुधारक, धार्मिक महापुरूष या शिक्षा गुरू हैं, वे यदि इस युवा पीढ़ी को यह ज्ञान दें कि वे विवाह होने के पश्चात् कैसे योग्य सन्तान उत्पन्न करें? तो यह सुधार काफी प्रभावशाली हो सकता है। क्योंकि जैसे पेड़

के ऊपर–२ पानी डालने से वह इतना हरा–भरा नहीं हो सकता जितना उसकी जड़ में पानी डालने से होगा। दूसरा आजकल जो दूरदर्शन (T.V.) का मीडिया है, जिसमें अश्लील दश्य, वेशभूषा व पाश्चात्य सभ्यता से भरपूर सीरियल दिखाए जाते हैं, उन पर रोक लगा कर हमारी भारतीय संस्कति से सम्बन्धित वेशभूषा, नैतिक शिक्षा व योग सम्बन्धी ज्ञान का प्रदर्शन करना चाहिए। जैसे आजकल स्वामी रामदेव जी लोगों को रोगों से मुक्त करने का आमूल चूल परिवर्तन करने का प्रयास कर रहे हैं और लोग इनसे काफी प्रभावित हैं। इसी प्रकार यदि T.V. पर युवा–पीढ़ी को विकसित करने के लिए आकर्षक व प्रभावशाली तरीके से नैतिक शिक्षा व योग के वह ढंग सिखाए जाए जिससे उनका जीवन सुखमय बन सके तो यह सुधार काफी हद तक सम्भव हो सकता है। इसके साथ ही स्कूल व कालिजों में नैतिक शिक्षा का विषय अनिवार्य रूप से रखा जाए, जिसमें उन्हें इस जीवन शक्ति के बारे में विशेष रूप से सचेत किया जाए ताकि वे इसे व्यर्थ में बर्बाद न करें। क्योंकि यदि वे इस शक्ति को नष्ट नहीं करेंगे तो वे ज्ञान–विज्ञान के जिस भी क्षेत्र में जायेंगे, कुछ नया कर दिखायेंगे। परन्तु इन सब बातों के निर्देशन के लिए किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष का संग और सत्संग अनिवार्य है। उसको इष्ट मानकर उसके वचन सुनने, गुनने और उस पर अमल करने से ही मनुष्य अपना जीवन सुन्दर बना सकता है और अपने परिवार, जाति, समाज, देश व मानव जाति की सेवा कर सकता है।

मुझे भाग्यवश गहस्थ जीवन में शुरू से ही पूर्ण विवेकी व पूर्ण अनुभवी गुरू मिल गए थे जिससे मेरे गहस्थ जीवन के साथ–२ वानप्रस्थ आश्रम व सन्यास का जीवन साथ–२ अपने आप बनता गया और गुरू ज्ञान से मेरे सब काम सहज में ही बन गए। अतः किसी विशेष शुभ कर्मों के फल से यदि किसी अनुभवी महापुरूष की कपा हो जाए तो उससे ध्यान योग सीख कर मनुष्य को अपने गहस्थ में एक विशेष सुख आनन्द से

जीवन जीने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वह अपनी आजीविका मेहनत से कमायेगा और परिवार में खर्च अपनी कमाई के अनुसार ही करेगा। योग्य सन्तान के विचार से विषय भोगेगा और जरूरत के अनुसार सन्तान उत्पत्ति कर अपने बच्चों को हमेशा सुन्दर–२ संस्कार देगा। इस गुरू ज्ञान से दोनों पति–पत्नी अपने माता–पिता व सास–ससुर का सम्मान करेंगे व सेवा करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करेंगे। आनन्द और खुशी के लिए सुबह–शाम ध्यान–योग का साधन करेंगे। अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जीवन शक्ति को स्वाद के लिए नष्ट नहीं करेंगे। मानसिक स्वास्थ्य के लिए इस ध्यान योग में मन एकाग्र होकर शक्तिशाली बन जाता है और बुद्धि तेज हो जाती है। इस प्रकार जहां दोनों पति–पत्नी ध्यान करने वाले होंगे तो ध्यान में उनको विशेष आनन्द मिलेगा और इस ध्यान और आपसी प्रेम से उनका जीवन हर रोज एक नई उमंग और खुशी का होगा। उनका घर स्वर्ग जैसा होगा और उस घर में हमेशा सुख–शान्ति व ऋद्धि–सिद्धि बनी रहेगी। जैसे कहा है –

'जहां सुमति तहां सम्पत्ति नाना, जहां कुमति तहा विपत्ति नादाना।'

अतः जो मनुष्य इस अवस्था में अपना चरित्र बचाकर, अच्छी शिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन बना लेता है तथा दूसरों का सम्मान करता है और घर में माता–पिता व अन्य बड़े बुजुर्गों की सेवा करता है तो उसे इसका फल मिलता है और खुशियां उसका दामन चूमती हैं।

इस बुद्धि और विज्ञान के युग में युवक–युवतियों का विशेष कर्त्तव्य और धर्म यह है कि योग्य सन्तान पैदा करके नए मनुष्य को जन्म दें जो अपने माता–पिता को सुख दे और जो उनका आज्ञाकारी व सेवक हो। इसके साथ ही वह अपने परिवार, जाति, गांव, प्रान्त व देश का भला चाहने वाला और मनुष्य समाज को सुन्दर बनाने वाला हो। यही वह युवावस्था का समय है जिसमें नए मनुष्य को जन्म दिया जा सकता है जो मनुष्य जाति का हर प्रकार से सुख देकर इस संसार को

स्वर्ग जैसा बना सकता है। इस विषय में मेरी पुस्तक ''सुखी जीवन का रहस्य'' पढ़ कर माताएं जैसा चाहें वैसी सन्तान पैदा कर सकती हैं। आज से पहले जितने भी योग्य मनुष्य पैदा हुए हैं, वह सब माताओं ने अपने विचार, संकल्प रख कर पैदा किए हैं। इस प्रकार माता–पिता, शिक्षा–गुरू व आध्यात्मिक महापुरूष अपने–२ तरीके से इस युवा पीढ़ी के दष्टिकोण को बदल सकते हैं और तभी यह भारत देश अन्य देशों की तुलना में ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है।

(3)

वद्ध पुरूष व स्त्रियों का कर्त्तव्य और धर्म

आजकल वद्ध पुरूष व स्त्रियों की बहुत शिकायत सुनने को मिलती है। उनकी शिकायत किसी हद तक ठीक भी है। परन्तु उनकी जो सन्तान की शिकायत है, वह तो उनकी अपनी ही अज्ञानता के कारण है और समझ उनको अब भी नहीं है कि यह सन्तान आज्ञाकारी व सेवा करने वाली क्यों नहीं है? यह उनकी ही नासमझी से सन्तान–उत्पत्ति का परिणाम है। यहां लोह और लुहार दोनों ही झूठे हैं। कुछ वद्धों की भी समझ ठीक नहीं है। उनके लड़के व बहुओं की आमदनी थोड़ी होती है और बूढ़े खर्चा अधिक करते हैं। दान–पुण्य भी करना चाहते हैं और नशा वगैरा भी करते हैं। स्त्रियां अपनी बेटियों और बहुओं में फर्क करती हैं और अपनी बेटियों को कुछ अधिक देना चाहती हैं। ऐसी हालात में परिवार में खिंचातानी होती है। बुढ़ापे के कारण बूढ़ों का स्वभाव भी कुछ रूखा और चिड़चिड़ा हो जाता है और उनकी बोली कठोर व कड़वी हो जाती है, जिसे जवान बेटे, पोते, बहुएं सुनना नहीं चाहते। यह बात ठीक है कि वद्ध

अवस्था के कारण बूढ़ों में शरीर के रोग, मन की चिन्ता तथा अन्य कई और दुख के कारण बन जाते हैं और वे शरीर व मन से पूरी तरह कमजोर हो जाते हैं।

अब इस तकलीफ का इलाज जो मेरे अनुभव में आया है, वह यह है कि वे किसी अनुभवी महापुरूष से नाम लेकर, सत्संग सुने और ध्यान–योग करे और भगवान् से सुख–शान्ति की प्रार्थना करते रहें। सत्संग सुनने से उनकी बोली में सुधार आ जायेगा और उन्हें अपने परिवार में प्रेम–प्यार से व्यवहार करने की समझ आ जायेगी। ध्यान–योग से उनका मन एकाग्र हो जायेगा अपना समय थोड़ा है, यह जानकर गुरू ज्ञान से लाभ उठा सकेंगे।

मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास एक वद्ध पुरूष आया करता था। वह घर में अपनी बहु के व्यवहार से बहुत दुःखी था, क्योंकि वह उसकी सेवा नहीं करती थी और न ही उसे ठीक से भोजन देती थी। एक ही पुत्र होने के कारण उस वद्ध को अन्य कोई और सहारा भी नजर नहीं आता था। वह मेरे गुरू महाराज जी के पास आकर अपनी दुखभरी कहानी सुनाता था तो एक दिन मेरे गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी ने उससे कहा कि आप अपनी बहु की किसी के सामने निन्दा न करें, अपितु घर में जो भी आए, उसके सामने उसकी खूब प्रशंसा किया करो और कहो कि मेरे घर में मेरी बहु लक्ष्मी है। वह जब से इस घर में आई है, घर स्वर्ग बन गया है और मेरी बहुत सेवा करती है। उस बूढ़े ने गुरू महाराज जी की बात पर अमल किया और कुछ ही दिनों में उसकी बहु के व्यवहार में बहुत सुधार हो गया और वह गुरू महाराज जी का सत्संग सुनने लग गई। और सत्संगियों की भी उसने बहुत सेवा की। इस प्रकार किसी महापुरूष का सत्संग सुनने से घरों में परिर्वतन आ जाता है, लेकिन वह उन्हीं के आता है जो गुरू की बात मानकर उस पर अमल करते हैं।

इधर बेटे, पोते और बहुओं को भी चाहिए कि वे अपने

सास, ससुर, मां, बाप पर दया भाव रखे और उनको जो भी सुख दे सके, उन्हें देना चाहिए। यह बुढ़ापा तो एक न एक दिन सभी पर आना है। यदि आप बूढ़ों पर दया भाव रखोगे तो आप पर भी समय आने पर दया होगी। जो आप युवक सज्जन अपने बड़े–बूढ़ों की सेवा करोगे तो पिछली आयु में आपकी भी सेवा होगी। क्योंकि यहां पर 'Give and take' का सिद्धान्त लागू होता है। अब वद्धों में सुधार होना कठिन है। यदि वे कुछ गलती करें तो युवकों को चाहिए कि वे उनकी गल्तियों को नजर अन्दाज कर, उनपर रहम करें और यह सोचे कि यह उनके वंश की बात नहीं है। उनकी कठोर बात को सहना ही सबसे बड़ा तप है। कोशिश की जाए कि किसी भी तरह उनका मन न दुखाया जाये, क्योंकि उनकी दुराशिष से घर में कोई न कोई संकट आता है।

जिन वद्ध सज्जनों ने किसी पूर्ण अनुभवी वक्त गुरू से नाम लेकर, उनका सत्संग ध्यान से सुनकर योग साधन किया है तो उनको कोई कष्ट नहीं हो सकता। और यदि जीवन के युवा अवस्था में ही समझ, विवेक, अनुभव और ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो वह कभी अपने आपको वद्ध समझता ही नहीं है। उसके लिए तो हर समय त्यौहार है। **''सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द''** वाली बात है। मैं खुद अब 80 साल की आयु में हर समय खुशी, उमंग से जी रहा हूं। कोई शिकायत नहीं है। हर समय मस्ती, खुशी, बेफिकरी, बेगमी बनी रहती है। मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य ही यह है कि सब तरह की सफलताओं के अन्त में उस शान्ति को प्राप्त करना, जो हर समय बनी रहे। परन्तु आम मनुष्य के हालात भिन्न–२ हैं। अतः वद्धावस्था में सन्तोष रखकर, अपने परिवार के साथ मिल–जुल कर जो जीवन का समय है, उसे प्रेम–प्यार से गुजारना चाहिए। और जहां तक हो सके गुरू धारण करके, उससे साधन का तरीका सीख कर अपनी सुविधानुसार दिन में तीन समय– सुबह, दोपहर व शाम को बैठकर सुमिरन, ध्यान व

भजन करना चाहिए। यदि भजन में मन न लगे तो जो भी काम आसानी से किया जा सके, उसे करना चाहिए। इससे नींद ठीक आयेगी और भूख भी लगेगी। इसी को कर्मयोग कहते हैं। आप यह न सोचना कि मैं वद्ध पुरूषों को काम करने को कह रहा हूं। मैं जानता हूं कि मनुष्य के लिए काम ही जीवन है और जीवन ही काम है। काम करने से नींद भी आयेगी और रोग भी कम होंगे। यह काम नींद और भूख की दवा है। अतः जो भी काम आसानी से कर सकें, अवश्य करना चाहिए। कभी बेकार न बैठें। और जहां तक हो सके कभी सेवा का विचार ही न रखें, अपितु यह सोचें कि मैं खुद परिवार की कुछ सेवा करूं। इससे आप बीमार ही नहीं होंगे और बीमार हैं तो यह भाव दवा का काम करेगा। जीवन में कभी निराश नहीं होना चाहिए। भगवान् या गुरू में विश्वास रखें कि जो भी होगा, वह भले में होगा। यह दुख–सुख हमें कोई दूसरा नहीं देता है, हमारे ही कर्मों का फल है। खुशी–२ इसे भोग लो। यह जीवन हमेशा आस–विश्वास का हो। जैसे कहा है –

''हिम्मते मर्द और मदते खुदा''।

जो सज्जन ब्रह्मचर्य, गहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों को सही तरीके से अनुभव करके अपनी अन्तिम यानी सन्यास अवस्था को पहुंच गए हैं, वे कपा करके अपना अनुभव जरूरतमन्दों में बांटें। गुरू आज्ञा यही है कि मनुष्य को अन्त समय तक काम करना है। काम करते–२ यह शरीर त्यागना है। ऐसा विचार या संकल्प बनाए रखो। कबीर साहब का शब्द है –

''बहुरि नहीं आवना या देश'' टेक
जो-२ गए बहुरि नहीं आये, पठवत नाहि सन्देश।
सुर नर मुनि और पीर औलिया, ब्रह्म देव गणेश।।

धरि-धरि जन्म सबै भरमे हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
जोगी जगम और सन्यासी, दिगम्बर दरवेश।।

चुण्डित मुण्डित तोई स्वर्ग रसातल शेष।
ज्ञानी गुनी चतुर और कविता राजा रंक नरेश।।

कोई रहिम कोई राम बखाने, कोई कहै आदेश।
नाना वेष बनाए सबै मिल, ढूंढि फिरै चहुं देश।।

कहे कबीर अन्त ना पै हो, बिन सतगुरू उपदेश।।

इस शब्द का असली भाव तो कबीर साहब ही जानते होंगे। मैं यह समझता हूं कि मनुष्य को जीवन में सत्संग, सतनाम और परम शान्ति की कमाई पूर्ण अनुभवी और तत्त्व ज्ञान के पूर्ण विवेकी महापुरूष की देख–रेख में करने से ही मिल सकती है। क्योंकि जिस तरह शरीर–ज्ञान का अनुभवी डाक्टर रोगी के रोग को समझ कर उसका इलाज कर सकता है, उसी ही तरह अनुभवी महापुरूष जीव के दुख और उसकी प्रकति को समझ कर ही उपदेश देता है और जीव को अन्त में परम शान्ति मिल जाती है।

प्यारे सज्जनों। यह अध्यात्म का विषय आत्मा और परमात्मा का विषय है। इस ज्ञान से मनुष्य को सुख–शान्ति व जो भी मनुष्य चाहता है, वह सब कुछ मिल जाता है। यह सुख, आनन्द, शान्ति तथा सिद्धि शक्ति मनुष्य के अन्दर भरी हुई है, परन्तु मनष्य को इसका ज्ञान नहीं है। यह किसी जीवति गुरू से समझना पड़ता है। वह गुरू ध्यान का तरीका बताता है कि किस तरह दोनों ओखों के बीच माथे में गुरू के रूप में भगवान् को मान कर ध्यान करो और जो भी आप सच्चे मन से चाहोगे, वही चीज आपको मिल जायेगी, परन्तु बुरे या घटिया विचार मत रखो, नहीं तो हानि हो जायेगी। तो मैंने वद्ध पुरूषों और स्त्रियों के लिए धर्म बताया है कि वे मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करें और जिस चीज की जरूरत हो वह मांगे, वह चीज उन्हें मिल जायेगी। भगवान् के घर किसी बात की कमी नहीं है।

''सकल पदार्थ है जग माहि, कर्महीन नर पावत नाहि।''

''सांई के दरबार में, कमी काहू की नाहि।
बन्दा मौज न पावहि, चूक चाकरी माहि।।''

''फैज का दर है खुला बन्द नहीं हरगिज।
शर्त यह है कोई मांगने सायल आये।।''

''जिथे चाह, उथे राह''

(Where there is demand, there is supply)

भाव समझ गये होंगे कि जब मनुष्य की तीव्र इच्छा या मांग होती है तब परमात्मा दयालु है, किसी भी साधन से वह उसको मिल जाती है।

(4)

अध्यापकों का कर्त्तव्य और धर्म

अध्यापक समाज के मूल को सुधारने का काम करते हैं। माता–पिता के बाद बच्चे अध्यापकों के पास आते हैं। जो शिक्षा के संस्कार यह शिक्षा–गुरू बच्चों को देते हैं, उन्हीं से वे आगे चल कर समाज को अच्छा या बुरा बनाते हैं। शिक्षक गुरू में जो भी गुण या अवगुण होंगे, वही तो विद्यार्थी ग्रहण करेंगे। अतः शिक्षक का आदर्श स्वरूप होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शिक्षक समाज के दपर्ण हैं। जैसा दर्पण होगा, वैसा ही तो देखने वाले को चेहरा नजर आयेगा। अतः शिक्षकों को पहले अपना सुधार करना चाहिए, जिससे वे मनुष्य जाति का, समाज का व देश

का कल्याण कर सकें।

1. शिक्षकों को अपने विषय का पूरा ज्ञान व अनुभव होना चाहिए, तभी वो बच्चों को सही ज्ञान दे सकते हैं।
2. अपने विषय के ज्ञान के साथ–२ उन्हें कक्षा में बच्चों को नैतिक शिक्षा का ज्ञान समय–२ पर अवश्य देना चाहिए। छोटी आयु के बच्चों पर इस नैतिक शिक्षा का बहुत प्रभाव पड़ता है, क्योंकि छोटे बच्चे बहुत मासूम व साफ दिल होते हैं। अतः उन पर जैसे संस्कार डाले जायें, वे उसे ग्रहण कर लेते हैं।
3. शिक्षकों की पोषाक साफ–सुथरी और सादी होनी चाहिए। यानी 'सादा जीवन और उच्च विचार' वाला आदर्श होना चाहिए।
4. शिक्षकों को विद्यालय में किसी भी प्रकार के बीड़ी, सिगरेट, पान, गुटका इत्यादि का नशा नहीं करना चाहिए। क्योंकि नशा करने से छात्रों पर उनके सही व्यक्तित्व की छाप नहीं पड़ती।
5. शिक्षकों की भाषा शुद्ध, साफ व मिठास से युक्त होनी चाहिए, क्योंकि भाषा का अपना विशेष प्रभाव होता है। उन्हें कभी बच्चों को कठोर व अपशब्द नहीं कहने चाहिए। जैसे कहा है–
   ''ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
   औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।''

   ''ईश्वर को नहीं मंजूर शक्ति जुबान में।
   इसीलिए उसने नहीं दी हड्डी जुबान में।।''

6. शिक्षकों को हमेशा समय का पाबन्द होना चाहिए और उन्हें सही समय पर विद्यालय या कक्षा में जाना चाहिए?
7. शिक्षकों को बच्चों को पढ़ाने में कभी कोताही नहीं बरतनी चाहिए और हमेशा सच्चे मन से पढ़ाना चाहिए।

तभी उनका वेतन पाने का मुख्य धर्म सफल होगा।

8. उन्हें सभी बच्चों को अपना बच्चा समझ कर पढ़ाना चाहिए और किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं करना चाहिए।

9. यदि शिक्षक सुबह ध्यान–योग करके विद्यालय जायें तो वे बच्चों पर अपनी अच्छी छाप छोड़ सकते हैं।

10. यदि बच्चों में कुछ कमजोर संस्कार हों तो शिक्षकों को चाहिए कि वे उन्हें प्यार से दूर करें और अच्छे संस्कार दें।

इस प्रकार अध्यापक का दर्जा मां–बाप से ऊंचा है और वह समाज की नींव को सुधारने वाला महत्वपूर्ण सुधारक है। अतः प्राइमरी स्कूल से लेकर कॉलिज तक के शिक्षकों का परम कर्त्तव्य है कि वे विद्यार्थियों को प्यार से ऐसी शिक्षा दें, जिससे वे योग्य मनुष्य बन कर मानव जाति की शोभा विश्व में बढ़ायें लेकिन यह तभी होगा जब शिक्षकों में स्वयं में वे गुण हों, जिन्हें वो विद्यार्थियों को देना चाहते हैं। इसके लिए उनका आदर्श होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि शिक्षकों में स्वयं में कुछ कमजोरियां हैं तो उनकी शिक्षा बच्चों पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सकती हैं। फिर तो वही बात होगी, जैसे कहा है –

''पर उपदेश कुशल बहुतेरे''।

इसके लिए आपको मिसाल के तौर पर एक छोटी सी कहानी बताता हूं। एक बुढ़िया का 5-6 साल का लड़का बहुत गुड़ खाता था। बुढ़िया इस बात से बहुत दुःखी थी। वह अपने लड़के को लेकर एक महात्मा के पास जाती है और कहती है कि बाबा जी मेरा यह लड़का बहुत गुड़ खाता है। आप कोई उपाए बतायें। महात्मा ने कहा कि आप दो महिने बाद आना। बुढ़िया दो महिने बाद पुनः दो कोस चलकर अपने बच्चे के साथ उस महात्मा की कुटिया पर जाती है तो महात्मा ने बच्चे को प्यार से कहा कि बच्चा, गुड़ न खाया करो और फिर उस बुढ़िया से कहा कि माई। अब यह बच्चा गुड़ नहीं खायेगा।

बुढ़िया हैरान थी कि यह बात तो बाबा दो महिने पहले भी कह सकता था, फिर उसने दो महिने का समय क्यों दिया? और जब बुढ़िया ने इसका कारण जानना चाहा तो उस महात्मा ने कहा कि माई दो महिने पहले मैं यह बात नहीं कह सकता था, क्योंकि उस समय मैं स्वयं गुड़ खाता था। अतः मेरी बात का बच्चे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अब मैंने दो महिने से गुड़ खाना बन्द कर दिया है। अतः मेरी बात बच्चे पर अवश्य प्रभाव डालेगी? कहने का भाव यह है कि जो हम दूसरों को कुछ सिखाना चाहते हैं तो वह गुण खुद हमारे अन्दर होना चाहिए। तभी सुनने वाला उससे प्रभावित हो सकता है। थोथी बात से कोई प्रभाव नहीं होता।

अतः शिक्षक को स्वयं इस बात पर विचार करना चाहिए कि जो शिक्षा हम बच्चों को देना चाहते हैं वह स्वयं के अन्दर है या नहीं। अगर नहीं है तो पहले अपना सुधार करना चाहिए। क्योंकि एक योग्य शिक्षक ही राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करने वाले बच्चों में उन स्वस्थ, सबल व उन्नत विचारों को उत्पन्न कर सकता है, जिससे वे राष्ट्र की उन्नति के निर्माण में अपना सहयोग दे सकें।

(5)

शिष्यों का कर्त्तव्य और धर्म

शिष्य दो प्रकार के हैं। एक तो सांसारिक विद्या का अध्ययन करने वाले छात्र–छात्राएं, जो स्कूल, कॉलेज या अन्य शिक्षण–संस्थाओं में इस लोक में सफलता पाने के लिए शिक्षा लेते हैं। दूसरे आध्यात्मिक ज्ञान को पाने के लिए जो गुरूओं के आश्रमों में जाते हैं।

स्कूल, कॉलिज व अन्य शिक्षण–संस्थाओं में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों का मुख्य कर्त्तव्य उस शिक्षा को पाना है जिसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे इन शिक्षण–संस्थाओं में प्रवेश करते हैं। विद्यार्थी हमेशा इस बात का ध्यान रखें कि उनका यहां प्रवेश लेने का मुख्य उद्देश्य अध्ययन करके ऊंची श्रेणी में पास होने का है। अतः उसे शिक्षा की प्राप्ति में रूकावट डालने वाली गतिविधियों से बचना चाहिए।

1. विद्यार्थियों को बुरी संगत से बचना चाहिए। क्योंकि बुरी संगत में पड़कर ये अपना जीवन बर्बाद कर बैठते हैं। संग का असर बड़ा प्रभावशाली होता है। जैसे कहा है – ''जैसा संग,वैसा रंग।''
2. विद्यार्थियों को अपने शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जहां तक हो सके T.V. नहीं देखना चाहिए क्योंकि T.V. में बच्चे उपयोगी चीजों को ग्रहण न कर पिक्चर,गाने व अश्लील चित्रों को देखना ही अधिक पसन्द करते हैं। इससे उनका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य नष्ट होता रहता है और वे समय से पहले कामी बन जाते हैं तथा लड़कियों से छेड़छाड़ व प्यार के चक्कर में पड़कर अपना लक्ष्य भूल जाते हैं।

3. विद्यार्थियों को अपने अध्ययन काल में चरित्र का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यह चरित्र उनके जीवन की धरोहर है। जो बच्चे अध्ययन काल में अपने चरित्र को गंवा बैठते हैं तो उनके हाथ कुछ भी नहीं लगता है और फिर वे जीवन भर पछताते हैं जैसे कहा है –
   If wealth is lost, nothing is lost,
   If health is lost, something is lost,
   If character is lost, everything is lost.
4. विद्यार्थियों को सहनशील, विनम्र तथा अनुशासन में रहने वाला होना चाहिए। उन्हें क्रोध में आकर कभी शिक्षण संस्थाओं में कोई तोड़–फोड़ नहीं करनी चाहिए। क्योंकि अनुशासन विद्यार्थी जीवन की सफलता का मूल मन्त्र है।
5. विद्यार्थियों का पहला लक्ष्य विद्या अध्ययन ही है और इस विद्या प्राप्ति के लिए उन्हें कठोर मेहनत करनी चाहिए, क्योंकि उनका यह समय कठोर तप करने का ही है जैसे कहा है –
   ''सुखार्थिनः कुतः विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।''
   अर्थात् सुख चाहने वाले को विद्या कहां और विद्या चाहने वाले को सुख कहां?
6. विद्यार्थियों में ज्ञान–प्राप्ति के लिए कौए जैसी चेष्टा, बगुले जैसा ध्यान और कुत्ते जैसी नींद होनी चाहिए और इसके साथ ही उसे अल्पाहारी अर्थात् कम मात्रा में भोजन करने वाला होना चाहिए। क्योंकि अन्न का अधिक सेवन करने से शरीर में आलस आता है। और विद्या प्राप्ति के लिए यदि उन्हें घर से दूर जाना पड़े तो इसके लिए भी उन्हें तैयार रहना चाहिए। जैसे कहा है–

''काक चेष्टा, बको ध्यान श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्।।

7. सबसे मुख्य बात यह है कि विद्यार्थियों को अपने शिक्षा गुरूओं का मान–सम्मान करना चाहिए। उनमें कभी कोई कमी नहीं देखनी चाहिए? जो छात्र–छात्राएं अपने शिक्षा–गुरूओं का सम्मान नहीं करते, वे अपने जीवन में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। और जब वे बड़े होकर कुछ काम करेंगे तब उनकी पत्नी, बच्चे, उनके शिष्य या उनके नीचे काम करने वाले उनका कोई आदर–सम्मान नहीं करेंगे, क्योंकि जो–२ व्यवहार उन्होंने अपने गुरूओं के साथ किया है, वही उनको मिलेगा। यह Give and take का सिद्धान्त है। अर्थात् मनुष्य जो देता है, वही पाता है। शिक्षा गुरू आदरणीय, सम्मानीय व पूज्य हैं। वे छात्रों को डांट–फटकार उनके भले के लिए लगाते हैं जैसे कहा है –

''गुरू कुम्हार शिष्य कुम्भ है घड़-२ काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहारा दे, बाहर लगावे चोट।।''

अर्थात् विद्यार्थी कच्चे घड़े हैं और अध्यापक कुम्हार हैं। जैसे कुम्हार जब घड़ा बनाता है तब वह अपना एक हाथ अन्दर घड़े में सहारे के लिए देता है और दूसरे हाथ से बाहर से चोट मार–२ कर घड़े को घड़ता है। इसी प्रकार विद्यार्थी के अवगुण या कमजोरी को दूर करने के लिए शिक्षा, गुरू डांट–फटकार करता है, परन्तु मन में उसके हित होता है कि इसकी कमजोरी दूर हो जाये और यह एक योग्य विद्यार्थी बन जाए। जो विद्यार्थी अपने गुरू की डांट फटकार को बुरा मानते हैं, वे जीवन में सफल नहीं होते और न वे सुखी रह सकते हैं। अतः विद्यार्थियों को अपने गुरूओं के प्रति श्रद्धा भाव रखना चाहिए और हमेशा उनके प्रति कतज्ञ रहना चाहिए।

इस प्रकार विद्यार्थियों के लिए उनका यह विद्यार्थी जीवन ही उनके भावी जीवन का मूल आधार–स्तम्भ है। और उनका यही वह सुनहरा समय है, जिसमें भावी विकास के सब साधन व गुण प्राप्त किए जा सकते हैं। उनका स्कूल, कॉलिज

में प्रवेश ज्ञानार्थ है और प्रस्थान सेवार्थ है। स्कूल, कॉलिज में पास होकर जहां भी वे काम करें, मन लगाकर अपने कर्त्तव्य को पूरा करें।

आध्यात्मिक शिष्यों का कर्त्तव्य और धर्म :-

अध्यात्म का ज्ञान बहुत श्रेष्ठ व ऊंचा ज्ञान है। इसको पाने के लिए शिष्य में कुछ विशेष गुण व योग्यताएं होनी चाहिए। सबसे पहले उसमें इस ज्ञान को पाने की सच्ची जिज्ञासा, तड़फ व लगन होनी चाहिए, क्योंकि जब तक उसमें यह सच्ची तड़फ नहीं होगी, वह इस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता है। आजकल जो यह आश्रमों में शिष्यों की भीड़ देखने को मिलती है, ये सब नाम के शिष्य हैं। इनमें अधिक संख्या मसखरों की है। सच तो यह है कि इनमें से कुछ तो सांसारिक दुःखों से दुःखी होकर, कुछ अपनी इच्छा पूर्ति के लिए और कुछ चमत्कारों के कारण गुरूओं की तरफ आकर्षित होते हैं। यही कारण है कि गुरूओं के पास जाकर भी इनके रंग–ढंग नहीं बदलते हैं।

सच्चे शिष्य की पहचान यह है –

विषयन से जो होय उदासा, परमार्थ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीति नहीं जाके, जगत पदार्थ चाह नहीं ताके।।
तन इन्द्री आसक्त न होई, नींद भूख आलस जिन खोई।
विरह बाण जिन हिरदे लागा, खोजत फिरे साध गुरू जागा।।

अर्थात् जिसके मन में इस ज्ञान को पाने की तड़फ होती है, वह सांसारिक विषयों से विरक्त होकर केवल सच्चे गुरू व ज्ञान की तलाश में भटकता रहता है और जब उसे कोई सन्तुष्ट करने वाला गुरू मिल जाता है तो वह उसे मालिक का साक्षात् स्वरूप मानता है और उसके लिए अपना तन–मन–धन सब कुछ न्यौछावर कर देता है।

जैसा देखत मैं फिरू, वैसा मिला न कोई।
वैसा तो सतगुरू मिला, जाकि बुद्धि मति धीर।
भवसागर के जीव को आन लगावे तीर।।

गुरू धारण करने के पश्चात् शिष्य में अपने गुरू के प्रति

सच्चा प्रेम, भक्ति, श्रद्धा व विश्वास होना चाहिए। जिसका गुरू के वचन पर पूर्ण विश्वास होता है, उसका काम बहुत जल्दी बन जाता है।

जाके मन विश्वास है सदा गुरू के संग।
लाख जतन झक झोरिए, कबहु न हो चित्त भंग।।
''सतगुरू वैद्य वचन विश्वासा।
संजम ये है न विषय की आशा।।''

शिष्य जब गुरू के पास जाए तो उसे अपने अहंकार को छोड़कर खाली होकर ही जाना चाहिए। कहते हैं कि जब स्वामी दयानन्द जी अपने गुरू वजानन्द जी के पास गए तब उनके गुरू जी ने कहा कि आपने जो कुछ पढ़ा है, इसे थूक दो और तब मेरे पास आओ। और जब स्वामी दयानन्द जी ने ऐसा किया, तभी वजानन्द जी ने उनके मस्तिष्क को भरा। तो जिसका मस्तिष्क पहले से भरा है उसमें गुरू क्या डालेगा, क्योंकि खाली घड़े को ही भरा जा सकता है, भरे को नहीं। अतः जब तक मनुष्य ऐसा नहीं करता, वह सफल नहीं हो सकता।

गुरू की शरण में जाने पर शिष्य को पूरी तरह से अपने आप को गुरू को सौंप देना चाहिए और हर प्रकार के चिन्ता, फिकर व दुःख से मुक्त हो जाना चाहिए। जैसे एक छोटा बच्चा मां का पल्लू पकड़कर चलता है तो उसे कोई भय नहीं लगता है, क्योंकि उसने पूरी तरह से अपनी मां का सहारा लिया हुआ है। जो शिष्य अपने गुरू का ऐसा सहारा ले लेता है यानी शरणागत हो जाता है तो गुरू उसका रक्षक होता है परन्तु लोग गुरू बना कर भी दुखी रहते हैं और चिन्ता, फिकर में डूबे रहते हैं। सच तो यह है कि उन्हें अपने गुरू पर पूर्ण भरोसा ही नहीं है। क्योंकि –

''जब तक मन में चिन्ता व्यापे, धोखा है शरणागत ना।''
''मन दिया कहीं और ही, तन साधुन के संग।
कहे कबीर कोरी गजी, कैसे चढ़सी रंग।।''

गुरूमुख जो काम करते हैं अपने सतगुरू की प्रसन्नता के लिए करते हैं। वह हमेशा उनसे दया, मेहर चाहते हैं और सब काम मौज के हवाले से करते हैं और कहते हैं –

''मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर।।''

''गुरू राजी तो कर्त्ता राजी।
काल कर्म की चले न बाजी।।''

''फल कारण सेवा करे, तजे न मन से काम।
कहे कबीर सेवक नहीं, चाहे चौगुना दाम।।
कबीर निरबन्धन बन्ध रहा, बन्ध निर्बन्धन होय।
कर्म करे करता नहीं, दास कहावे सोय।।''

सच्चा सेवक या शिष्य वह होता है जो गुरू के दिल में अपना स्थान बना लेता है। ऐसा शिष्य भक्ति रूपी धन से हमेशा परिपूर्ण रहता है और उसमें इतनी शक्ति होती है कि भगवान् या गुरू भी उसके प्रेम से उसके वशीभूत हो जाते हैं। उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है –

गुरू समरथ सिर पर खड़े, काहि कमी तोहि दास।
रिद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छोड़े पास।।
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहु काल।
पलक एक में प्रगट होय, क्षण में करू निहाल।

चेला तो चित में बसे, गुरू चित के आकाश।
अपने में दोनों लखे, वही गुरू का दास।।

कई बार तो चेले इतने मेधावी होते हैं कि वे अपने गुरूओं को प्रगट कर उनका नाम रोशन कर देते हैं। जैसे कबीर के गुरू रामानन्द जी को कोई नहीं जानता था। कबीर

ऐसे शिष्य हुए कि उन्होंने अपने गुरू को दुनिया में प्रकट कर दिया। इसी प्रकार मछन्दर नाथ गुरू जब काम या माया में बहकर कामरूप देश में चले गए तब उनके शिष्य गोरखनाथ ने वहां जाकर, अलख जगाकर उन्हें चिताया –

जाग मछन्दर गोरख आया, अगम पिछम दिया हेला जी।
जाग-२ करनी के पूरे, तुम सतगुरू हम चेला जी।
भगिनी ने जाया भगिनी ने उपजा,भगिनी ने गोद खिलाया जी।
उठ कदम पर भागिनी जो बैठी, ये जति गोरख गाया जी।

तो यह गुरू–शिष्य का एक व्यवहार है, इसे कोई दूसरा नहीं जान सकता है। कहते हैं कि एक बार स्वामी जी महाराज से किसी ने पूछा कि क्या आप सालिग्राम जी के गुरू हैं? तो उन्होंने उत्तर दिया कि कौन जाने वह मेरा गुरू है या मैं उसका गुरू? ऐसे गुरू–शिष्य संसार में दुर्लभ ही मिलते हैं।

गुरू भी दुर्लभ चेला भी दुर्लभ।
कहीं जोग से मेल मिला।।
शिष्य नवे है गुरू को, यह जाने सब कोय।
गुरू नवे जब शिष्य को, विरला जाने कोय।।

आजकल बहुत से बुद्धिमान् लोग गुरू की आवश्यकता ही नहीं समझते हैं। वे बहुत बड़ी गलती पर हैं। आप खुद ही सोचें कि जब दुनिया का छोटे से छोटा काम भी बिना सीखे नहीं आता है तो भला इतना बड़ा ज्ञान बिना गुरू के कैसे प्राप्त किया जा सकता है? हमारे प्राचीन शास्त्र उत्तम ग्रन्थ हैं, जो लोगों को अच्छे संस्कार देते हैं परन्तु उनसे यह ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है अर्थात् पुस्तके मतक हैं पुस्तकों में राजे खुदा नहीं। मूर्ति–पूजा से भी इच्छा पूर्ति हो सकती, सिद्धि–शक्ति आ सकती है लेकिन मूर्ति बोल नहीं सकती है और यदि कोई भक्त अपने इष्ट रूपी मूर्ति को प्रकट भी कर ले और वह मूर्ति बोल भी पड़े तो यह सत्य नहीं है। सच्चाई इससे आगे है। यह आत्म–ज्ञान तो जब आयेगा, वह किसी जीवित पुरूष से ही आयेगा। मुर्दा या जड़ वस्तुएं यह ज्ञान नहीं दे सकते हैं। अतः इस ज्ञान की

प्राप्ति के लिए पहले जीवित गुरू की भक्ति अनिवार्य है और यह भक्ति प्रेम के बिना नहीं हो सकती है। जैसे कहा है –

''गुरू गोबिन्द दोऊं खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी वा गुरूदेव की, जिन गोबिन्द दियो बताय।।''

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
कहे कबीर तब पाईये, जब भेदी लीजे साथ।।
भेदी लीना साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में दिया लखाय।।

ध्यान मूलं गुरू मूर्ति, पूजा मूलं गुरू पदम्।
मन्त्र मूलं गुरू वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरू कपा।।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु, गुरूर्देव महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रहम, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

तो अब आप समझ गए होंगे कि जो शिष्य अपने गुरू को मालिक का रूप मानते हैं, वही यह तत्त्व ज्ञान की शिक्षा ले सकते हैं। गुरू को साधारण पुरूष मानने वालों को कुछ हासिल नहीं होता है। जैसे कहा है –

गुरू को मानुष जानते, ते नर कहिए अन्ध।
दुखी होंय संसार में, आगे जम का फन्द।।
गुरू को मानुष मानते, चरणामत को पान।
ते नर नरकहि जायेंगे, जन्म-२ होय स्वान।।

अतः इन अध्यात्मिक शिष्यों का धर्म है कि वे अपने गुरू को मालिक का रूप जान कर उनके दर्शन करें, वचन सुनें, मन में गुनें और उस पर अमल करें। गुरू की आज्ञा से ही सब काम करें। अपनी मन मर्जी न कर, गुरू की मर्जी में रहें। गुरू भक्ति ही यहां मुख्य बात है।

शब्द

सत्संग करत बहुत दिन बीते, अब तो छोड़ पुरानी बात।
कब तक करे कुटिलता गुरू से, अब तो गुरू को ले पहचान।।
गुरू को तुम मानुष मत जानो, वह है सत्त पुरूष की जान।
जैसे तैसे मन समझाओ, धर परतीत करो उन ध्यान।।
दया मेहर से वचन सुनावे, वह है पूरण पुरूष अमान।
धरी देह मानुष की गुरू ने, ज्यों त्यों तेरा करें कल्याण।।
सेवा कर पूजा कर उनकी, उन ही को गुरू नानक जान।
वही कबीर वही सत्त नामा, सब सन्तन की वही पहचान।।
तेरा काज उन्हीं से होगा, मत भटके तू तज अभिमान।
चूके मत अवसर अब पाया, बढ़कर इनसे कोई न मिलान।।
जो तू अबकी गुरू से चूका, तू भरमेगा चारों खान।
फिर ऐसे गुरू मिलें न कबहीं, मान मान तू अब ही मान।।
पढ़-२ पोथी गा-२ साखी, क्यों मन में तू धरता मान।
इसी मान ने ख्वार किया है, यही मान अब करता हान।।
ताते प्यारे कहूं बुझाई, यह इस्तगना भली न जान।
जल्दी करो कपट को छोड़ो, श्रद्धा भाव बढ़ाओ आन।।
इतने पर मन कहा न माने, तू फिर अपनी तू ही जान।
सिर पर तेरे हुक्म काल का, ताते मन तेरा नहीं मान।।
लगा रहेगा संग में गुरू के, सहज-२ शायद मन मान।
एक बात जानी हम भाई, है तू बड़का बेईमान।
राधास्वामी कहें बुझाई, ऐसे जीव होयं हैरान।।

(राधास्वामी सार वचन)

(6)

आध्यात्मिक महात्माओं की पहचान व समाज के प्रति उनका कर्त्तव्य और धर्म

संसार में जिस प्रकार आज हर चीज की दुकानदारी है, वैसे ही धर्म भी उससे बचा नहीं है। जगह–२ गुरू–चेलों की भरमार दिखाई पड़ती है। गुरू अपने स्वार्थवश चेले बनाते हैं और इन्होंने सन्तों के मार्ग को अपना पेट पालने का साधन व आधार बना लिया है। गुरू और चेला दोनों सच्चे गुणों से रहित हैं और ऐसे गुरू चेलों को ऐसी पट्टी पढ़ा देते हैं कि वे अपने सोच–विचार व बुद्धि विवेक को छोड़कर कट्टर, हठधर्मी और पक्षपाती बनकर सन्त मत के मुख्य उद्देश्य से कोसों दूर हो जाते हैं। चेलों से धन लेने वाला गुरू अपने चेलों पर आश्रित हो जाता है। जब वह खुद बन्धन में जकड़ा हुआ है तो भला वह किसी को क्या मुक्त करेगा?

बन्धे को बन्धा मिला, बन्धन रहा बंधाय।
सेवा कर निरबन्ध की, पल में लेय छुड़ाय।।
बन्धे को क्या आसरा, बंधा जगत के फंद।
आप बंधा शिष्य भी बंधे, व्यापा जगत का द्वन्द।।

– –

गुरू चेला व्यवहार जगत में, झूठा वरत रहा।
का से कहूं समझ नहीं काहू, धोखे धार बहा।
गुरू तो मान प्रतिष्ठा चाहे, चेला स्वार्थ संग भया।
सच्चा मार्ग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त भया।।

परन्तु ऐसी बात नहीं है कि झूठी गुरूवाई करने वाले ही हर जगह रहते हैं। सच्चाई भी यहीं पर मौजूद है क्योंकि सष्टि कर्म का आधार सच्चाई ही है। अतः जिज्ञासु को बुद्धि विवेक से काम

लेना चाहिए। जैसे कहा है –

''पानी पीजिए छानकर, गुरू कीजिए जानकर''।

परन्तु गुरू की पहचान भी आसान नहीं है। वास्तव में मनुष्य में यह ताकत नहीं कि वह सतगुरू को पहचान सके, क्योंकि सतगुरू कभी अपने आपको प्रकट नहीं करते, वह साधारण मनुष्यों की तरह रहते हैं और व्यवहार करते हैं। अतः जिस पर उनकी दया हो, वही उन्हें पहचान सकता है, दूसरा नहीं।

इस विषय में कुछ बातें विचार करने योग्य हैं। सच्चे सन्तों का जीवन साधारण मनुष्यों के समान सादा और सरल होता है और वे अपने सतगुरू होने का ढिंढोरा नहीं पीटते और न ही अपनी सिद्धि–शक्ति का प्रयोग करते हैं।

सच्चे सन्त महापुरूष अपने रोजी–रोटी खुद कमा कर खाते हैं, वे दूसरों की कमाई पर आश्रित नहीं रहते। जैसे कबीर ने पूरी उम्र ताना बुन कर इस नाम की कमाई की तो रैदास ने जूता गांठते हुए इस परम शान्ति को पाया। वैसे हमारे प्राचीन शास्त्रों की ओर देखें तो पता चलता है कि हमारे पहले के ऋषि–मुनि भी गहस्थी होकर अपनी रोजी रोटी खुद कमाते थे और योग साधना से अनुभव करके ज्ञान बांटते थे। बाद में कुछ ऐसी लहर चली जिसमें बुद्ध व महावीर जैसे महात्माओं ने देश में लोगों को भिक्षु बनाया और हमारे पहले के ऋषि–मुनियों की ज्ञान की विधि उस समय समाप्त हो गई और उनके संस्कार आज भी देश में देखने को मिलते हैं। उसके बाद नाथ सम्प्रदाय आया जिन्होंने अपने शरीर को साधु का वेश बनाया और उस समय के राजा–महाराजाओं से भिक्षा मंगवाकर यह ज्ञान दिया। शायद यह राजाओं के अहंकार को दूर करने के लिए था। परन्तु अब समय बदल गया है और आज के सन्त मत या राधास्वामी मत में यह आवश्यक है कि ये महापुरूष खुद अपनी आजीविका कमाएं, अध्यात्म ज्ञान का अनुभव करें और फिर उसे अन्यों में बांटें। मैनें खुद ने 1941 से 1975 तक सेना की नौकरी की और दूसरे युद्ध से लेकर 1971 तक के सभी युद्धों

में भाग लिया। इससे मुझे जीवन में कभी पैसे का कोई अभाव नहीं रहा। और सन् 1962 से मैं यह सत्संग देने का काम करता आ रहा हूँ और हमेशा उस सदा रहने वाली शाश्वत शान्ति की हालत में मस्त रहता हूँ।

सच्चे महापुरूष सार तत्त्व के ज्ञाता होते हैं, कथाकार नहीं। वह घुरधाम से यहां अधिकारियों को चिताने के लिए आते हैं और जीवों को अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट शब्दों में सच्चा ज्ञान देते हैं। वह जीव के सभी भ्रम व शंकाओं को दूर कर उन्हें इस आत्म ज्ञान का अनुभव करा देते हैं। जीवों को बन्धन से छुड़ाना इनका मुख्य उद्देश्य होता है, इसलिए इनको मुक्ति दाता कहा जाता है।

गुरू समान दाता नहीं, सब जग मांगनहारा।
क्या राजा क्या बादशाह, सबने हाथ पसारा।।
गुरू समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, पल में दीन्हीं आन।।
पारस और सन्त में, यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, गुरू करले आप समान।।

सच्चे महापुरूष सदाचार की साक्षात् मूर्ति होते हैं। इनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता। ये पूर्णतया निष्काम, निस्वार्थ व अचिन्त होते हैं। ये सभी जीवों को समान दष्टि से देखते हैं, किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं करते। यह सबको एक लाठी से नहीं हांकते। जैसे डाक्टर रोगी के रोग की जांच कर ही उसे दवा देता है, उसी प्रकार सतगुरू जीवों की प्रकति व संस्कार देखकर उसके अनुसार उनको शिक्षा देते हैं। वह हमेशा जीवों का हित चाहते हैं और आशावादी व उन्नत विचार देकर उनके संस्कार बदल देते हैं। वह मन व आत्मा के डाक्टर होते हैं और अपने मान–सम्मान व यश की उन्हें कोई चाह नहीं होती है। जैसे कहा है –

तरवर फले न आपको, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर।।

तरवर सरवर सन्त जन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारने, चारों धारे देह।।

वास्तव में असली और सच्चा गुरू शब्द और प्रकाश के रूप में प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में है और यही निज रूप है। परन्तु बाहरी जीवित गुरू के बिना इसे जाना नहीं जा सकता। इसलिए जो महापुरूष जीव को सब कुछ उसके अन्दर होने का पूर्ण निश्चय या विश्वास करा दे, उसी का नाम सतगुरू है। ऐसा महापुरूष हमेशा शब्द की धार में रहता है और ऐसे महापुरूष के जो व्यक्ति दर्शन करता है, संग करता है तो उसकी रेडियशन का उस पर अवश्य प्रभाव पड़ता है और ऐसा साधु जो सहज में बोलता है, वह अवश्य पूरा होता है।

''साधु बोले सहज सुभाय।
साधु का बोला वथा न जाय।।''

''साध वचन पलटे नहीं, पलट जाए ब्रह्मण्ड।''

इसलिए कहा है –

''गुरू बिन गति नहीं, ज्ञान बिन मत नहीं''
''गुरू कहें सो हितकर जान।
गुरू कहें सो चित कर ध्यान।।''

''घट में घट दिखलाय दे, वह सतगुरू चतुर सुजान।''

अतः ये जप, तप, पूजा पाठ, तीर्थ, व्रत इत्यादि बाहरी कर्मकाण्ड करवाने वाले, धूनी रमाने वाले, भगवां वस्त्र पहनने वाले गुरू जीवों को धुरधाम तक नहीं ले जा सकते। हां, सुन्दर संस्कार दे सकते हैं, परन्तु मंजिल तक नहीं ले जा सकते। जैसे कबीर साहब ने कहा है –

ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाड़े, ना पांचों के मारे।।
दया राखि धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।

अपना सा जीव सबन का जाने, ताहि मिले अविनाशी।
सहै कुशब्द वाद को त्यागै, छोड़े गर्व गुमाना।
सत्त नाम ताहि को मिली है, कहे कबीर सुजाना।।

अर्थात् जो दया भाव रखकर धर्म या कर्त्तव्य का पालन करता है, संसार के सभी बन्धनों से मुक्त है, अपना सा जीव सबको जानकर किसी का दिल नहीं दुखाता, वाद–विवाद या अहंकार को जिसने त्याग दिया है और जिसमें कठोर शब्द सहने की शक्ति है, वही इस नाम का अधिकारी है। वैसे कठोर वचन साधु ही सह सकता है, दूसरा नहीं। जैसे कबीर साहब ने कहा है –

''खोद खाद धरती सहे, काट कूट बन राय।
कुटिल वचन साधु सहे, और से सहा न जाय।।''

तो जो हर हाल में हर स्थिति में सम अवस्था में रहता है, वही सन्त है। उसके कोई सींग पूछ नहीं होती। मुझे ऐसे सच्चे सन्त पं० फकीरचन्द जी महाराज के रूप में मिले, जिनसे मुझे इस अध्यात्म या तत्त्व ज्ञान का अनुभव सन् 1956 में प्राप्त हुआ और सन् 1962 से मैंने उनकी आज्ञा से यह सत्संग का कार्य शुरू किया। उनके सत्संग से व सत्संगियों के अनुभव से मेरे धर्म सम्बन्धी सभी भ्रम दूर हो गए। इस अध्यात्म ज्ञान के विषय में मेरा अनुभव यह है कि धर्म विश्वास का विषय है। दूसरा मनुष्य के मन में जो विचार, भाव, संकल्प आते हैं, ये सब देखी, सुनी व पढ़ी हुई बातें होती हैं। स्वपन में, योग साधन में या नंगी आंखों से उसे जो रंग, रूप व नजारे भासते हैं या फिर उसे जो अपने इष्ट देवी–देवता का, गुरू–पीर का या डरावने भूत–प्रेत इत्यादि का जो रूप नजर आता है, वह सब उसका मन बनाता है, सच्चाई नहीं है, लेकिन वह सच्च समझता है और यही भ्रम है।

इसका पहला प्रमाण तो मेरे गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी का साहित्य है, जो इस सच्चाई से भरा पड़ा है। दूसरा प्रमाण मेरा है। मेरे सत्संगों में जो प्रेमी सज्जन आते हैं, वो मेरे

से प्रसाद ले जाते हैं और उनका काम जो वह चाहते हैं, पूरा हो जाता है। दूसरा, जब भयवश या प्रेमवश उनका मन इकट्ठा हो जाता है, तब मेरा स्वरूप उनको नंगी आंखों से प्रकट होकर उनकी सहायता करता हे। कभी स्वपन में दर्शन देकर होने वाली बात को उन्हें पहले ही बता देता है। कभी किसी को योग साधन के समय मेरा रूप प्रकट होकर उनकी मदद करता है और कभी किसी मरने वाले को मेरा रूप प्रकट होकर उन्हें पहले ही बता देता है कि मैं उस दिन और उस समय आकर आपको ले जाऊंगा और ऐसा ही होता है। अर्थात् मेरा रूप जो मेरा सत्संग सुनकर मेरे प्रति विश्वास रखते हैं, उनमें जागते हुए, स्वपन में या साधन के समय प्रकट होकर उनकी सहायता करता है और सच्चाई यह है कि मुझे कुछ मालूम नहीं होता कि कौन मेरा ध्यान करता है? और मैंने किसकी क्या मदद की है? क्योंकि मैं मदद करने कहीं नहीं जाता हूँ। फिर यह रहस्य क्या हुआ?

सज्जनों। मेरा अनुभव यह है कि हर मनुष्य के मन में शक्ति है। उसका मन ही इष्ट का रूप बना कर दर्शन देता है। यदि उसका मन पवित्र है तो होने वाली घटना पहले ही जिस रूप में मनुष्य विश्वास करता है – देवी–देवता, बाला जी, माता जी, राम, कष्ण, मोहम्मद, ईसामसीह, गुरू, पीर, पैगम्बर उनका रूप बना कर उसकी मदद करता है। और यह धर्म की बात आज तक रहस्य में चलती आई है। सिवाय मेरे गुरू महाराज जी के इस भेद को किसी ने स्पष्ट रूप से नहीं खोला। कबीर साहब ने धर्मदास को कहा था–

''धर्मदास तोहि लाख दुहाई ।
सार भेद बाहर नहीं जाई।।''

राधास्वामी वाणी में आता है –

''सन्त बिना कोई भेद न जाने।
वे तोहि कहें अलग में ।।''

धार्मिक महापुरूषों ने यह रहस्य शायद किसी कारण से

नहीं खोला होगा। इसमें कोई भलाई होगी परन्तु इस अज्ञान के कारण यह मनुष्य जाति अलग–२ सम्प्रदायों में बंट गई और आज धर्म के नाम पर मनुष्य मनुष्य का शत्रु बना हुआ है। यदि यह सच्चाई ये धर्म का काम करने वाले गुरू–पीर लोगों को स्पष्ट बता दे कि ऐ मानव। तुम्हारा राम, तुम्हारा कष्ण, तुम्हारा ईसा, तुम्हारा गुरू, तुम्हारा ही मन है तो यह धर्म के नाम पर होने वाले लड़ाई–झगड़े काफी हद तक बन्द हो सकते हैं। वैसे सैन–वैन में तो यह बात पहले भी कही गई है। कि जैसे –

''जिसकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।।

अतः सभी मनुष्यों का एक ही परमात्मा है, सबकी आत्मा व सुरत भी एक जैसी है और अंश रूप में वह भगवान् सभी मनुष्यों के मन में विराजमान है। बस सच्चाई जानने की जरूरत है।

आज महापुरूषों ने बहुत बड़े–२ आश्रम व डेरे बना कर अपने शिष्यों की बहुत भीड़ इकट्ठी की हुई है। यह एक अच्छी बात है, जो वह आज के चिन्तित मनुष्यों को अपने वाणी–वचनों से सुख व शान्ति दे रहे हैं, परन्तु उनके भ्रम दूर नहीं हो रहे हैं। इन गुरूओं के शिष्य आम आदमी से ज्यादा भ्रम में हैं और इनमें पक्षपात व हठधर्मिता अधिक देखने में आती है। यदि इनको सत्संगों में यह सच्चाई बता दी जाए कि जो आपके अन्दर रूप, रंग, दश्य प्रकट होते हैं, यह सब आपके ही मन की शक्ति है, बाहर से गुरू, देवता कुछ नहीं आता है। यह शक्ति इष्ट या गुरू–पीर में नहीं अपितु भक्त के मन में और उसके विश्वास में है तो मनुष्यों की भागदौड़ और भटकन छूट सकती है और उनके भ्रम दूर हो सकते हैं। इस रहस्य को खोलकर ही ये महापुरूष समाज को सही रास्ता दिखा सकते हैं।

इसी तरह यह पण्डित, पुरोहित, ज्योतिषी सज्जन मनुष्यों को अपने जाल में फंसाकर, उनके मन में तरह–२ के भ्रम शंका उत्पन्न करके अपने पेट के लिए उनको धोखा दे रहे हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि ज्योतिष ज्ञान झूठा है। या शास्त्रों का ज्ञान झूठा है। यह सब उस समय और उन लोगों के लिए ठीक था, परन्तु समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है। अब बहुत से नए ग्रह आ गए हैं। यदि कोई ज्योतिष ज्ञान देना चाहे तो पहले वह खुद भगु ऋषि की तरह योग साधन करके देखे और अब जो ग्रह आसमान में नए आए हैं, उनका मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुभव करके फिर आज के मानव को बताए तो वह ज्ञान सही होगा। अब ज्योतिष ज्ञान तो किसी को है नहीं, सब अपना पेट पालने के लिए लकीर पीट रहे हैं और मनुष्य जाति को भ्रम में डाल रहे हैं। एक तो मानव पहले से ही दुःखी है और दूसरा यह पण्डित पुरोहित बगल में पोथी पतरा दबाए हुए मानव को नई–२ उलझन व भ्रम में डाल रहे हैं। जैसे लिखा है कि –

''पण्डित वही जो गाल बजावा, भांति-२ की गप्पा उड़ावा।''

परन्तु वास्तव में पण्डित उसको कहते हैं, जैसा नानक देव जी ने कहा है –

पण्डित वह जो मन परबोधे, राम नाम आत्म में सोधे।
हरि की कथा हृदय बसावे, सो पण्डित फिर जोनि न आए।
चहुं वर्णा को दे उपदेश, नानक ता पण्डित को सदा आदेश।।

तो प्यारे सज्जनों। पण्डित बहुत बड़े योगी महापुरूष को कहते थे। यह पण्डित ब्राह्मण से ऊँचे होते थे। ब्राह्मण तो केवल ब्रह्म का आचरण करने वाले को कहते थे जो ध्यान–योग में अपने अन्दर प्रकाश का अनुभव करते थे, परन्तु पण्डित उसे कहा जाता था जो अध्यात्म यानी तत्व ज्ञान का पूर्ण अनुभवी होता था और मानव जीवन के ब्रह्मचर्य, गहस्थ व वानप्रस्थ आश्रम का अनुभव करके सन्यास की अवस्था तक पहुंच जाता था। इस समय में उस पण्डित का नाम सन्त है। तो चर्चा थी समाज सुधार की। अतः इन झूठे बनावटी ज्योतिष, पण्डित, पुरोहितों ने समाज के रूप को बिगाड़ रखा है और इन साधु, सन्त महात्माओं ने अपने पेट तथा इज्जत मान के लिए समाज का हित करने

की बजाय उसे कुरूप बना रखा है। अतः इन सज्जनों के चाहिए कि वे समाज पर दया मेहर करके लोगों को धोखा न दें और उन्हें भ्रमों में न डालें। यदि किसी के पास योग–साधन से कोई अच्छी बात का अनुभव हो तो वह उसे ईमानदारी से समाज में बांटे, यही उनका मुख्य धर्म है और इसी से उनको पुण्य होगा, उनका जीवन सुख–शान्ति का होगा और भगवान् उनका भला करेगा। अतः मेरी इन पूज्य साधु, सन्त, पण्डित, पुरोहित व ज्योतिषी सज्जनों से यह प्रार्थना है कि वे सब मानव समाज के सच्चे सेवक बनें तथा अपने पेट व निजि स्वार्थ या गरज़ के लिए समाज को धोखा न दें तथा न किसी प्रकार की हेरा–फेरी या चार सौ बीसी करें क्योंकि यदि वे ऐसा करेंगे तो उनको वही चीज वापिस मिलेगी, उनका जीवन दुख–तकलीफ का होगा और इसका परिणाम भी अच्छा नहीं होगा।

मैं आत्म ज्ञान व तत्त्व ज्ञान के विषय का अनुभवी हूँ और मैंने जो कुछ भी सीखा है वह इस समाज से सीखा है अतः अपना कर्जा उतारने के लिए मानव समाज की सेवार्थ अपने अनुभव से इस रहस्य को खोलना चाहता हूँ कि सभी शक्तियां मनुष्य के अन्दर हैं, बाहर से कोई देवी, देवता, इष्ट, गुरू–पीर नहीं आता है, वह सब उसके मन की शक्ति व विश्वास का खेल है उसका मन ही जिस रूप में जिस इष्ट को मानता है तो वह शक्ल बना कर उसकी मदद करता है। साथ ही धर्म–कर्म का काम करने वाले गुरू–पीरों से निवेदन है कि यह जीवन सेवा करने के लिए मिला है, अतः आप अपना अनुभव सच्चाई से सत्संगों में बता कर मानव जाति को इस सच्चाई के बारे में बताएं ताकि धर्म के नाम पर जो भेद भाव है, वह दूर हो और मानव भाई–भाई बन कर प्रेम प्यार से जीवन जिये। अध्यात्म केवल कथा या गाना बजाना ही नहीं है। पहले यह अध्यात्म का ज्ञान गाकर या कविता व साखी के रूप में दिया जाता था। वैसे गाना बजाना रोचकता पैदा करता है व मन में स्थिरता लाता है परन्तु अध्यात्म प्राकतिक ज्ञान है जिसे योग साधन करके मनुष्य

या योगी अपना नया–२ अनुभव खुद करता है और अपने भक्तों या शिष्यों को उस अनुभव के बारे में बताता है। मैं इन आध्यात्मिक सज्जनों को मानव समाज के ही सदस्य समझता हूं, इसलिए समाज के प्रति इनका कर्त्तव्य लिखा है। जहां गुरू–शिष्य की बात है, वह मानव समाज से अलग नहीं है। जैसे कहा है–

''शिष्य को ऐसा चाहिए गुरू को सर्वसब दे।
गुरू को ऐसा चाहिए शिष्य का कछु ना लेय।।''

"Service of the people is service of God"

अर्थात् मनुष्यों की सेवा ही भगवान् की सेवा है।

सब मनुष्यों की सेवा तो हम कर नहीं सकते परन्तु परिवार में जितने आदमी हमारे साथ माता–पिता, भाई–बहन, स्त्री, पुरूष, बच्चे जो कुदरत ने हमारे पीछे लगा रखे हैं, उनकी सेवा ही भगवान् की सेवा है। अब रही बड़े स्तर की बात जैसे गुरूओं के आश्रम व डेरों की तो जितने मनुष्य इन गुरूओं के पीछे लगे हुए हैं, उनकी सेवा ही भगवान् की सेवा समझ लें। मैं इसको समाज सेवा समझता हूं, क्योंकि भगवान् तो किसी ने देखा नहीं है। हर मनुष्य के मन में अंश रूप में भगवान् बैठा है। मानव समाज के बहुत मनुष्यों ने इकट्ठा होकर उनको गुरू–पीर माना है, अतः उनको सच्चा ज्ञान देना ही भगवान् की सेवा या मानव समाज की सेवा है। अब सत्संग करवाने वाले अचार्य या गुरू स्वयं अपनी रहनी देखें कि वे उस वीतराग अवस्था के वासी हैं या नहीं। यदि वो उस अवस्था के वासी नहीं हैं और केवल अपने मान–सम्मान या निजी स्वार्थ के लिए गुरूआई करते हैं तो यह बड़ा भारी जुर्म है और वे इस करनी के फल से बच नहीं सकते। जैसे कहा है –

1. **जैसी जो करनी करे, वैसी आगे आवे।**
   निज करनी भरनी पड़े, करनी का फल पावे।।
2. **मन वचन कर्म को साध ले, इनसे सब कुछ होय।**
   आप भले तो जग भला, यह जाने सब कोय।।

शब्द

सन्तो समझे का मत न्यारा,
जो आत्म तत्त्व विचारा।
औरन से कहे आपा खोजो, आप अपना नहीं जाने।
मुख कुछ आन हिरदे कुछ आना, कैसे राम पहिचाने।।
औरों से कहे मोह न कीजे, निरमोही होय रहिये।
माया मोह सकल आप में, या दुख कासों कहिये।।
औरन से कहे तजो बड़ाई, आप बड़ाई चाहे।
मान बड़ाई छूटत नाहिं, झीना पीर कहावे।।
औरन से कहे पक्ष न लीजे, आपा पक्ष न त्यागे।
कहन सुनन को साध कहावे, सांच कहे रिस लागे।।
जब जग राग द्वेष मन माहीं, स्तुति निन्दा भाये।
तब लग त्रयताप ना छूटे, कहा भये भव गाये।।
पद साखी औरन समझावे, आपे समझे नाहीं।
कहें कबीर राम क्यों दरसे, जब दुविधा मन माही।।

(7)

राजनेताओं का समाज व देश के प्रति कर्त्तव्य और धर्म

जब हमारे देश में राजा राज करते थे तब राजा का जो धर्म होता था, उसी को प्रजा मानती थी। अब जनतन्त्र है। इसमें जनता स्वयं राजनेता बनाती है। आज के राजनेताओं के लिए किसी ने कहा है –

''राजा प्रजा का पात्र है, वह एक प्रतिनिधि मात्र है।
यदि वह प्रजापालक नहीं, तो वह एकदम त्याज्य है।।''

यह राजनेता मानव समाज से ही आते हैं और मानव समाज ही इनको ऊंची कुर्सियों पर बैठाता है। असल में यह

मानव समाज इनको अपनी सेवा के लिए ही यह काम सौंपता है, अतः ये मानव समाज के सेवक हैं। कबीर साहब ने सेवक के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जैसे –

1. **सेवक सेवा में रहे, अन्त कहूं नहीं जाय।**
   दुख सुख सिर ऊपर सहे, कहें कबीर समझाय।।
2. **सेवक मुखा कहावई, सेवा में दढ़ नाहि।**
   कहें कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहि।।
3. **सेवक फल मांगे नहीं, सेव करें दिन रात।**
   कहें कबीर ता दास पर, काल करै नहीं घात।
4. **फल कारन सेवा करे, तजै न मन से काम।**
   कहें कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम।।

यानी ये राजनेता, ग्राम पंचायत के पंच, सरपंच, एम.एल.ए., एम.पी., मन्त्री, प्रधान मन्त्री व सरकार यह सब मानव समाज के बनाए हुए हैं और ये मानव समाज के सेवक हैं। इनके पास अधिकार हैं अतः ये मानव समाज को उन्नत व सुखी बनाकर सबसे बड़ी सेवा कर सकते हैं। परन्तु कुछ गिनती के सज्जनों को छोड़कर इन राजनेताओं के पास कोई योग्यता नहीं है। बहुत से नेताओं को तो चपड़ासी, अध्यापक, क्लर्क आदि की नौकरी नहीं मिलती तो ये पार्टी में आकर, राजनेता बनकर अपनी रोजी–रोटी का ढंग जैसा भी जायज या नाजायज ढंग से बना लेते हैं और मानव–समाज की सेवा की बात भूल जाते हैं। दूसरी पार्टियों की बुराई करना और कुर्सी को हथियाना ही इनका मुख्य काम रह जाता है। मेरा भाव यहां किसी की बुराई–भलाई से नहीं है, क्योंकि मैं राजनीति का आदमी नहीं हूं। मैं तो इन राजनेताओं को उनके कर्त्तव्य के प्रति सचेत करना चाहता हूँ।

सेना से पैंशन आने के बाद मेरी तन्खाह की आमदनी कम हो गई थी और घर का खर्चा ज्यादा था क्योंकि सब बच्चे स्कूल, कॉलिज में पढ़ते थे। तब मैंने एक कोचिंग केन्द्र शुरू

किया था। उस समय वहां मेरे इलाके के मोहर सिंह राठौर राजनेता थे। उनका भाई मेरे साथ सैनिक सेवा में कर्नल था, अतः वह मुझे जानते थे। वहां चुरू के पंचायती प्रधान की जगह खाली थी। उन्होंने मुझे अपने घर किसी अपनी पार्टी के आदमी को भेज कर बुलाया और कहा कि कैप्टन साहब, हम आपको प्रधान पद के लिए चुनना चाहते हैं। मैंने कहा – ठाकुर साहब, मैं इस योग्य नहीं हूं और मैं यह काम नहीं कर सकता। उन्होंने कहा – आप काम की चिन्ता न करें, आप तो बस हां कर लें, काम हम सब कर लेंगें। मैंने कई बार उनको कहा कि आप यह काम किसी और को दे दो परन्तु उन्होंने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। वह उस समय मेरे इलाके के एम.पी. के पद पर थे। चार–पांच दिन बाद उन्होंने मुझे फिर बुलाया और कहा कि आपने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने फिर उसे कहा कि मैं यह काम नहीं कर सकता। वह मेरे से परिचित नहीं थे कि मैं आध्यात्मिक आदमी हूँ। आखिर मुझे कहना पड़ा कि ठाकुर साहब आप तो प्रधान पद की बात कर रहे हैं, मेरे लिए एम.पी. का पद भी कुछ काम का नहीं है। तब वह कुछ नाराज होकर बोले कि साहब, आप तो बहुत बड़े आदमी बन गए हो। एम.पी. बहुत बड़ा राजनेता होता है और जनता ने उसे बहुत शक्ति व अधिकार दे रखे हैं।

ये राजनेता खुद तो कोई योग साधन कर नहीं सकते हैं, क्योंकि बहुत लोगों की Radiation इन पर पड़ती है और इनके मन में बहुत घटिया विचार भरे होते हैं। इन्हें कर्म फिलोस्फी व विचारों का ज्ञान ही नहीं है। और यह लोक संकल्प का है। जैसे किसी के विचार या नीयत होती है वैसा ही इनका जीवन बन जाता है। पहले समय में राजा–महाराजा किसी पूर्ण अध्यात्म के अनुभवी महापुरूष को गुरू बना लेते थे और उनकी सलाह से राज कार्य सम्बन्धी काम करते थे। उन्हें भले–बुरे कार्यों के परिणामों का ज्ञान था। उनके मन में प्रजा का हित मुख्य तौर पर रहता था और इसी कारण वे वेश बदलकर घूमते

थे कि कहीं उनके राज्य में कुछ गलत तो नहीं हो रहा है या प्रजा में कोई किसी कारण दुखी तो नहीं है। और यदि उनके सामने कोई समस्या आ जाती थी तो वे अपने आध्यात्मिक गुरू के पास जाकर उनकी सलाह से उस समस्या को हल कर लेते थे। और अपनी वद्ध अवस्था आ जाने पर अपनी अधिकारी पुत्र को यह राज–पाट सौंपकर, अपने गुरू के पास जाकर अपनी आत्मा की शान्ति का योग सीखते थे। इस प्रकार वे अपना अन्तिम जीवन उस परम शान्ति का अनुभव करने में लगाते थे। परन्तु आजकल के राजनेताओं के मन में प्रजा के हित की कोई भावना नहीं है उन्हें तो बस राज हथियाने और अपना घर भरने की लगी रहती है। वो भूल जाते हैं कि जिस प्रजा ने उसे नियुक्त किया है, उसके प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है? उन्हें इस कुर्सी से इतना प्रेम हो जाता है कि वे मरते दम तक भी इसे छोड़ना नहीं चाहते। कैसा कानून है इस देश का? और सभी पदों के लिए तो योग्यता व सेवा निवत्ति की आयु निश्चित है, परन्तु इन राजनेताओं की कोई योग्यता व आयु सीमा निश्चित नहीं है। जो आयु आराम करने की या शान्ति प्राप्त करने की होती है, उसमें ये इस राज–पाट से चिपके रहते हैं और झूठे दावे करके प्रजा को धोखा देते रहते हैं।

आज के नीचे से ऊपर तक के सभी राजनेताओं को मैं यही सलाह दूंगा कि आप किसी पूर्ण विवेकी और अनुभवी महापुरूष जिसके पास बैठने या जिसके दर्शन करने से आपको खुशी मिले और जिसके दर्शन करने से आपको खुशी मिले और जिसके वचन सुनने से आपको सही समझ आए, उस महापुरूष से सम्पर्क रखें ताकि आप सही काम कर सकें और जिस मानव समाज ने आपको यह पद दिया है, उसकी सेवा करके समाज को सुन्दर व खुशहाल बनाएं। आपको पद के नशे में यह नजर नहीं आता है कि अब समाज में क्या हो रहा है? और जब आपकी कुर्सी छिन जायेगी तब आप कुछ नहीं कर सकेंगे। अब समय हाथ में है। समय गुजरने के बाद तो सड़क मापने

वाली बात है और यह भी निश्चित नहीं कि समय दोबारा आपको अवसर दे या न दे। अतः जो नेकी या भलाई का काम कर सको तो इस अवसर को मत गंवाओ। यह जो कुछ प्यारे नेता लूट–खसोट कर धन बटोर रहे हैं तो याद रखें यह अन्त में साथ जाने वाला नहीं है और अन्त में पछतावे के सिवाय कुछ हाथ नहीं आयेगा। जैसे कहा है –

''अब पछतावे क्या होत है? जब चिड़िया चुग गई खेत''

मैंने 36 साल तक सेना में अधिकारी पद पर सेवा की है। 1941 से 1971 तक सभी युद्धों में भाग लिया था। लगभग 6 साल सेना में भर्ती ऑफिसर के पद पर सेवा की, जिसमें रिश्वत खूब चलती थी। परन्तु मैंने एक सन्त की संगत की हुई थी, अतः रिश्वत से बच गया। आज 80 साल की आयु में स्वस्थ हूँ और मुझे किसी बात का अभाव नहीं है। मेरे साथ के जिन ऑफिसरों ने रिश्वत लेकर अपनी मकराने की कोठियां बनाई, कारें खरीदी या लूट–खसोट करके और एय्यासी का सामान बनाया, उन सबका अन्त मैंने बहुत बुरा देखा है। किसी को कुछ रोग तो किसी को कुछ तकलीफ। और अन्त में दुःखी होकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। लेकिन मैं अब 80 साल की आयु में भी बहुत ही सुख–शान्ति का जीवन जी रहा हूँ। आगे की कुछ कह नहीं सकता कि कल क्या गुजरे? अतः आप राजनेताओं से यही कहना चाहता हूं कि आप किसी आज के समय के सन्त की संगत करें व उसका सत्संग सुनें और जो सेवा आपको इस मानव समाज या जनता ने दी है, उसे ईमानदारी से करो और इस समाज को सुन्दर बनाओ। आप इस बात को मत भूलो कि आप एक सामाजिक प्राणी हैं और यह राज–पाट आपके जीवन में एक छोटे से स्वप्न के समान है जो सच नहीं है। अतः होश में आओ और किसी सन्त की शरण में जाकर अपना रूप पहचानों कि आप क्या हो? कहां से आये हो और कहां जाना है? जिस जनता ने आपको नेता बनाया है, सत्ता दी है, उसका

सदुपयोग करें। मैं जानता हूं कि मेरी बात आपके समझ में तभी आयेगी जब आपका कोई शुभ कर्म होगा। अब तो आप इस सत्ता के नशे में भूले हुए हो और इस भाग दौड़ में लगे हुए हो। अतः आपके पास ऐसी छोटी बातें सुनने का समय भी कहां है? लेकिन मैं आपकी बाद में होने वाली दयनीय स्थिति को जानता हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि आप मानव समाज व देश में जिस भी स्तर पर काम कर रहे हैं, उसे ईमानदारी, सच्चाई व प्रेम भाव से करें। समाज व देश का भला तो आप ही लोगों ने करना है, मैं तो कर नहीं सकता हूँ। आपको केवल राय या सलाह ही दे सकता हूं।

मैं देख रहा हूं कि जब से देश स्वतन्त्र हुआ है तब से लेकर अब तक राजनेताओं के काम में बहुत गिरावट आई है। मैं पहले राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी के समय राष्ट्रपति भवन में डयूटी पर था। पहले ग्राम पंचायत के चुनाव में दो माह की सेना से छुट्टी पर गांव में चुनाव के समय हाजिर था। उस समय हाथ उठाकर वोट गिने गए थे। उस समय के राजनेता और आज के राजनेताओं में मैं बहुत अन्तर देख रहा हूँ और अब इनके विचार, भाव व काम को देखते हुए ही अपना अनुभव बता रहा हूँ और साथ ही यह चेतावनी दे रहा हूँ कि प्यारे नेताओं। होश करो। यह जो लूट–खसोट आप कर रहे हो, इस कर्म का फल आपको भोगना होगा। यह सदा रहने वाली चीज नहीं है। जीवन तो एक छोटा सा स्वप्न है। यह जो भ्रष्टाचार देश में फैल रहा है, इसकी जिम्मेवारी आप पर है, क्योंकि सत्ता आपके हाथ में है। अतः आप इस पर ध्यान दें और इसको रोको। सेवा का मौका मिला है, इसका लाभ उठाओ। क्योंकि जैसे आप खुद होंगे, वैसा ही यह आपका समाज व देश बन जायेगा। ''यथा राजा तथा प्रजा'' वाली बात है। समाज या देश की जान–माल की रक्षा आपके हाथ में है। समाज में बाकी जो लोग काम कर रहे हैं, उनके हाथ में सत्ता नहीं है। आपको कोई यह सच्चाई नहीं बतायेगा कि आप क्या कर रहे हैं? मैं यह

बात जानता हूँ कि बहुमत का राज है। एक या दो नेता ईमानदार या सच्चे भी हों तो उनकी कौन सुनता है? परन्तु फिर भी कर्म फिलोस्फी तो यही है कि जो करेगा, वही भरेगा इससे कोई बच नहीं सकता। जैसे इस शब्द में लिखा है।

शब्द

सब भोगें बारम्बार, अवश्य फल कर्म किये का।
यह सोच समझ चितधार, मर्म जग जन्म जिये का।।
सुर नर देवी देव महर्षि, और ब्रह्म अवतारा।
अशुभ कर्म के फल से इनको, मिले नहीं छुटकारा।।
एक जो कहिये राम महाप्रभु, पुरूषोत्तम मर्यादा।
गुप्त घाट सरजू जल बूड़े, रामायण सम्वादा।।
दूजे कहिये कष्ण विवेकी, सोलह कला के पूरे।
यदुकूल नाश भील की गांसी, भये मान मद चूरे।।
तीजे युधिष्ठिर धर्मराज की, अकथ अपार कहानी।
भाई भारजा संग गले हिम, सो सब कोई जानी।।
चौथे वशिष्ठ महा मुनि ज्ञानी, देखा कुल का नाशा।
विश्वामित्र के हाथ पलट गया, ज्ञान योग का पासा।।
पंचम दशरथ अवध नरेशा, श्रवण ऋषि को मारा।
पुत्र वियोग प्राण को त्यागा, मिला न राम सहारा।।
छठे इन्द्र की करनी समझो, शाप बहस्पति दीना।
भग मय देवराज की काया, कर्म का फल यह लीना।।
चन्द्र कलंकित काम वेग से, जाने सब संसारा।
करम अटल है महाबली है, कोई कोई करे विचारा।।
रावण बालि भरत जड़ ज्ञानी, ऋषि के सुत दुर्वासा।
कर्म किया तैसा फल पाया, अन्त में भये उदासा।।
सुन प्रसंग चित अपना सोधो, सोधो मन कर्म वानी।
शब्द योग कर जन्म बनाओ, राधास्वामी की सहदानी।।

जो राजनेताओं को इस धर्म–कर्म के बारे में यह समझ लेना चाहिए कि पूरी मनुष्य जाति का एक ही भगवान् है और

सभी मनुष्यों की आत्मा भी एक ही जैसी है। यह नहीं है कि हिन्दुओं का भगवान् और है तथा मुसलमानों का ईसाइयों का और है। यह भ्रम व अज्ञानता है, हिन्दुओं का यह कहना कि राम तो अयोध्या में राम मन्दिर में बैठा है और मुसलमानों का यह कहना कि खुदा बाबरी मस्जिद में बैठे हैं, कितनी भ्रम व अज्ञान की बातें हैं? जो आज देश के नेता कर रहे हैं और इस बात पर आपस में मनुष्य मनुष्य का शत्रु बनकर उसका सिर काटने को तैयार है। प्यारे राजनेताओं। भगवान् या खुदा या उस परमात्मा का कुछ भी नाम रख लो, वह शक्ति यहां से बहुत दूर है परन्तु अंश रूप में वह हर मनुष्य के अन्दर है। पूरी दुनियां में जितने मनुष्य हैं, सबका एक ही परमात्मा है। मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी ने सब मनुष्यों के लिए एक ही धर्म बताया है, वह है – मानव धर्म या 'मजहबे इन्सानियत'। यहां धर्म के नाम पर सब लड़ाई – झगड़ा ही समाप्त हो जाता है। जैसे किसी उर्दू के कवि ने देश–प्रेम के लिए कहा है –

''हिन्दी हैं हम वतन है, हिन्दुस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा।।

अतः ये नेता पहले मनुष्य बनें और प्रेम से रहना सीखें, तभी उन्हें सुख शान्ति मिल सकती है ।

शब्द

बुद्धि जब तुमको मिली, मिल जुल के रहना सीख लो।
द्वेष तजकर प्रेम की, युक्ती का गहना सीख लो।।
भाइयों से बैर त्यागो, मित्रता का भाव लो।
मुख से मीठे और मधुर, वचनों का कहना सीख लो।।
लड़ते-२ हो गये हो, अब निबल सोचो भी कुछ।
यह दशा अच्छी नहीं, सुमति का लहना सीख लो।।
ऐसा हो व्यवहार जिससे, सुख मिले और शान्ति।
कौन कहता है कि दुख, सागर में बहना सीख लो।।
राधास्वामी जग में आये, प्रेम का परिचय दिया।
मेल का साधन हो मिलजुल, के निबाहना सीख लो।।

(8)

वैद्य, हकीम और डॉक्टरों का कर्त्तव्य और धर्म

वैद्य, हकीम और डॉक्टर मानव समाज के विशेष सदस्य हैं। जब मनुष्य का शरीर रोगी होता है तो ये सज्जन उसके रोग को समझ कर उसका इलाज करते हैं, क्योंकि ये शरीर के तन्त्र के ज्ञाता होते हैं। पहले समय में यह वैद्य रोगों का इलाज अधिकतर जड़ी–बूटियों से करते थे और ये अपने इस काम के साथ–२ आध्यात्मिक भी होते थे।

अब इस युग में विज्ञान ने इस विषय में बहुत उन्नति की है और डॉक्टरों को बहुत अच्छी पढ़ाई मनुष्य के शरीर के तन्त्र की व दवाईयों की दी जाती है। डॉक्टर अपने काम में बहुत उन्नति पर हैं और विज्ञान की उन्नति के कारण मनुष्य के शरीर के तन्त्र की जांच करने के लिए वैज्ञानिकों ने नई–२ मशीने बना दी हैं, जिससे डॉक्टरों द्वारा रोग को जानने में बहुत आसानी हो गई है।

यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं, वासना या संकल्प का है। मनुष्य जैसा विचार रखता है, वैसा ही होता रहता है। वह जिस नीयत से काम करता है, उसका प्रभाव अवश्य होता है। अर्थात् **''जैसा ख्याल वैसा हाल''**। अब डॉक्टरों का पेशा ही ऐसा है कि अधिक से अधिक बीमार आएं तो उनका धन्धा चले। इसलिए डॉक्टरों की नीयत या विचार यह रहता है कि लोग बीमार हों और उनकी दुकानदारी चले। यानी ये डाक्टर लोग सामूहिक रूप से बिमारियों को निमन्त्रण देते रहते हैं। दूसरा, जैसे मनुष्य का स्वभाव है लोभ लालच करने का तो इन डॉक्टरों ने अपनी फीस निश्चित की हुई होती है। अब समाज में सब मनुष्य तो आर्थिक दष्टि से बराबर नहीं हैं, अतः गरीब मनुष्य

डॉक्टरों के इलाज का लाभ नहीं उठा सकते हैं। वैसे सरकार ने गरीबों के लिए मुफ्त इलाज का कुछ प्रबन्ध किया हुआ है, परन्तु उसके लिए भी काफी भाग–दौड़ करनी पड़ती है जो गरीब नहीं कर सकता और सरकारी अस्पतालों में सारी सुविधाएं व दवाईयां उपलब्ध नहीं हैं और न ही सरकार इस तरफ ध्यान देती है।

डॉक्टर वैज्ञानिक हैं और जितना भी यह विज्ञान है, यह तन्त्र ज्ञान में आता है। तन्त्र का मतलब तन से है। तन में ही मन और आत्मा रहते हैं। मानव ने आत्मा और परमात्मा का अनुभव तन्त्र और मन्त्र दोनो विधियों का प्रयोग करके इस विषय का अनुभव किया है। मन्त्र का मतलब गुरू मत है और तन्त्र का मतलब किसी सूत्र का प्रयोग करके, उसका प्रभाव देख कर फिर उसको सही मानना है। जैसे डाक्टर रोगी का रोग समझकर उसको पहले तीन या पांच दिन की दवा देता है। फिर उसका प्रभाव देखकर यदि दवा लग जाती है तो वही और यदि नहीं लगती तो बदल कर फिर उसका प्रभाव देखकर वह आगे काम करता है। यह तन्त्र का सूत्र है। इसी ही तरह अध्यात्म ज्ञान का अनुभव करने वाले तान्त्रिक पहले छोटे–२ पतंजलि योग के सूत्रों का प्रयोग करते–२ अन्त में अपने अन्तर में तत्त्व की खोज करके उसका अनुभव करते हैं। अतः डॉक्टरी ज्ञान और इंजिनियरिंग दोनों विज्ञान तन्त्र में आते हैं। कहने का भाव यह है कि इंजिनियरिंग वस्तु के साथ प्रयोग है और डॉक्टरी मनुष्य के तन और मन के साथ प्रयोग है। पशु–पक्षी इत्यादि जो भी तन रखते हैं, सब इसी में आ जाते हैं।

मैं चिकित्सक सज्जनों को समाज की सेवा के विषय में यह बताना चाहता हूँ कि आप इस मनुष्य समाज की बहुत बड़ी व महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं, अतः आज देश में जो यह चारों तरफ भ्रष्टाचार, लूट–खसोट व धन इकट्ठा करने के जायज व नाजायज तरीके देखने व सुनने में आ रहे हैं, आप इनसे प्रभावित न हों। क्योंकि डाक्टर को ईश्वर का ही दूसरा स्वरूप

माना जाता है जो रोगी में नई जान डालता है। इसलिए पैसे के लिये रोगी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करना भारी जुर्म है। आपकी नीयत केवल रोगी के रोग को दूर करने की होनी चाहिए। यदि आप ऐसा करते हैं तो इन दुखी रोगियों की दुआवों से आपका भला होगा। यह जो अच्छा, मकान, कपड़े, भोजन इत्यादि के साथ रहने के लिए जो ऊँचें स्तर वाली बात है, यह महज एक दिखावा है। अतः आप इनके चक्कर में न पड़कर ईमानदारी व साफ नीयत से अपना काम करें। ऐसा करने से अवश्य आपको लाभ होगा।

मेरी राय है कि आप चिकित्सक के साथ–२ आध्यात्मिक भी बनें। अध्यात्म का अर्थ है – ध्यान योग सीखकर सुबह शाम कुछ समय बैठकर ईश्वर का ध्यान करना। इस ध्यान–योग से आपके मन व आत्मा की शान्ति बनी रहेगी। आपको हर समय खुशी महसूस होगी और आपको अपने काम में नई–२ सूझ सूझती रहेगी। इसके लिए आपको एक उदाहरण देता हूँ –

मेरे गुरू पण्डित फकीरचन्द जी महाराज दूसरे युद्ध के समय में रेलवे विभाग में स्टेशन मास्टर से रिटायर होकर बंगलौर में चले गए। वहां हॉस्पिटल में एक अंग्रेज सर्जन था। उसको किसी ने मेरे गुरू महाराज फकीरचन्द जी के बारे में बताया कि वह एक बहुत बड़े सन्त हैं। एक दिन वह सर्जन अपनी पत्नी के साथ पण्डित फकीरचन्द जी के मकान पर आए और उन्हें कहा कि मैंने सुना है आप बहुत बड़े सन्त–महात्मा हैं। मुझे एक तकलीफ है कि जब मैं ऑपरेशन–थियेटर में जाकर ऑपरेशन करने लगता हूं तब मेरे हाथ कांपने लग जाते हैं और मैं औजार ठीक से नहीं पकड़ सकता, अतः ऑपरेशन नहीं कर पाता हूँ। मेरे गुरू महाराज ने उस अंग्रेज सर्जन से कहा कि जिस तरह आप शरीर के डाक्टर हैं, मैं मन और आत्मा का डाक्टर हूँ। आपको एक विधि बताता हूं। उसका प्रयोग करो और 40 दिन के बाद मेरे से मिलना, ठीक हो जाओगे। मेरे गुरू जी आध्यात्मिक मनुष्य थे। वे इन्सान की प्रकति को देखकर

उसी के अनुसार उसको तरीका बताते थे। यदि वे उस डॉक्टर को राम नाम, ईसामसीह या कुछ और तरीका जो अध्यात्म में बताया जाता है, बताते तो वह विश्वास नहीं करता। इसलिए उन्होंने उस सर्जन को बताया कि आप एक स्थान पर बैठकर पहले दिन 100 से उलटी गिनती 80 तक, दूसरे दिन 100 से 60 तक, तीसरे दिन 100 से 40 तक, चौथे दिन 100 से 20 तक और पांचवे दिन 100 से 1 तक करना। उसके बाद 35 दिन तक यह 100 से उलटा 1 तक की गिनती रोज करना और 40 दिन बाद मेरे से मिलना। आप बिल्कुल ठीक हो जाओगे।

ठीक 40 दिन के बाद वह सर्जन और उसकी पत्नी फूलों का गुच्छा लेकर गुरू जी से आकर मिले। वह बहुत खुश थे और उसने कहा कि दस दिन के साधन से ही मेरा हाथ कांपना बन्द हो गया और अब मुझे ऑपरेशन करने में कोई कष्ट नहीं होता है। आप मुझे अध्यात्म का ज्ञान दें। गुरू जी ने कहा कि आप यही काम करें। आपके लिए यही अध्यात्म है। और एक–दो परहेज जो जरूरी थे वह बता दिये। गुरू जी कहते थे कि उस सर्जन के पत्र आते रहते थे। उस समय सर्जरी में इतनी तरक्की नहीं थी, परन्तु उस सर्जन ने बहुत बड़े–२ सफल ऑपरेशन किए और कई देशों से गोल्ड मैडल प्राप्त किए। कहने का भाव यह है कि आप जो काम कर रहे हैं, यह करते हुए यदि आपने किसी आध्यात्मिक महापुरूष का सहारा लिया हुआ है और यदि आपको आत्म विश्वास है तो आपका आत्म विश्वास और अधिक बढ़ेगा व अपने काम में अधिक सफलता मिलेगी। यह भी एक प्रयोग है करके देख लें। इसके साथ आपको परम आनन्द व परम शान्ति भी मिलेगी। अतः मैं आप सज्जनों को यही कहूंगा कि मानव समाज या मनुष्य की सेवा ही भगवान् की सेवा है। ये जो दूसरे राजनेता या कर्मचारी वर्ग के लोगों को आप देख रहे हैं, इनके प्रभाव में आकर धन बटोरना आपका काम नहीं है। जहां तक जीवन की आवश्यकता की बात है, धन लो परन्तु सोच समझ कर। लेकिन आपकी लगन

यह हो कि रोगी स्वस्थ हो जाए।

मैंने चिकित्सक सज्जनों के लिए मानव समाज को सेवा के साथ यह भी सलाह या राय दी है कि वे कुछ समय अपने कल्याण यानी मन व आत्मा की शान्ति का भी निकाले और किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष से ध्यान–योग की विधि सीख कर थोड़ा–२ साधन भी करें। अन्त में यही काम आयेगा, क्योंकि जो कुछ मनुष्य के साथ जाता है, वह उसी के शुभ–अशुभ कर्मो का फल होता है। मनुष्य इस संसार में मुख्य प्राणी है। बुद्धिजीवी होने के कारण यह अपना अनुभव जिस क्षेत्र में बढ़ाना चाहे, बढ़ा सकता है। इस विषय में राधास्वामी वाणी का एक शब्द लिखता हूं।

शब्द

काम जो करना हुआ, चित दे उसे करते रहो।
छोड़ो दुविधा दुरमति, दुचिताई से डरते रहो।।(1)
यह समझ लो तुम हुए, जैसे किया कर्म और विचार।
अपनी करनी पार उतरनी, है यही उपदेश सार।।(2)
सोचो अपने मन में, औरों से न पूछो बात को।
बच के चलना दूर करके, मन के सब उत्पात को।।(3)
एक चित होकर करो, सुमरिन भजन दिन रात तुम।
करनी से हो लगन सच्ची, कथनी को दो मात तुम।।(4)
सहज में साधन हो, कठिनाई की चिन्ता छोड़कर।
काम में अपने लगो, बातों से मुंह को मोड़ कर।।(5)
जो करो पूरा करो, करना हो जो वह कर लो अब।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति का, सजा लो साज अब।।(6)
राधास्वामी की दया से, जन्म अपना लो बना।
गुरू की सतसंगत करो, सब पूरी होगी कामना।।(7)

अर्थात् मनुष्य के अति शुभ कर्म हो तभी वह दुनिया के सब काम करते हुए अपने जीवन को सफल बना सकता है और समाज में अपने जीवन–निर्वाह के लिए छोटे से छोटा काम

करते हुए और बड़े से बड़ा काम करते हुए इस आत्मिक अनुभव को प्राप्त कर सकता है। मैंने सेना में सेवा करते हुए इस विषय का अनुभव किया और अब साधारण जीवन जीते हुए इसका अनुभव कर रहा हूं। तो प्यारे चिकित्सकों आप भी जनता या समाज की सेवा करते हुए यदि चाहो तो इस विषय का अनुभव कर सकते हो, परन्तु शर्त यह है कि **"Duty first, Religion after"** अर्थात् कर्त्तव्य का पालन पहले और धर्म बाद में।

धर्म का यह अर्थ है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए किसी जीवित अनुभवी महापुरूष से सहज योग की विधि सीख ले। समय मिलने पर सुबह शाम उसका अभ्यास करते हुए इस बात का अनुभव कर ले कि मेरे अन्दर जो तत्त्व बोल रहा है वह क्या है? कहां से आया है और शरीर छोड़कर कहां जायेगा? यानी खुद के अनुभव का नाम ही धर्म है। जैसे किसी ने पूछा कि आप कौन हैं और कहां से आये हैं? तो उत्तर मिला –

''पता हम खाक बतलायें, नहीं नामों निशा अपना।।''

''हम अपने आप हैरॉ हैं। करें क्यूंकर बयां अपना।।''

तो मनुष्य की यह हालत है कि उसको पता नहीं कि यह अन्दर बोलने वाला क्या है?

(9)

वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य और धर्म

मैंने पहले भी कहीं लिखा है कि आज का मनुष्य आध्यात्मिक व वैज्ञानिक दोनों हो, क्योंकि ऐसा होने से मनुष्य इसी ही जीवन में सुख–शान्ति भोगते हुए परम शान्ति व परम आनन्द का अनुभव कर सकता है। अब यह समय बुद्धि, समझ व विवेक का है। वैज्ञानिक इस बात को समझें कि किस आविष्कार से मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है और किस अविष्कार से मनुष्य का विनाश होता है? वैज्ञानिक इस मनुष्य समाज में ही पैदा हुआ है और इसी में पुष्ट होकर उसने शिक्षा आदि को प्राप्त किया है। अतः यदि वह मनुष्य जाति का विनाश करने वाले शस्त्रों का आविष्कार करेगा तो समझ लें कि उसका कल्याण नहीं है। अतः वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे अपनी सुख सुविधा व वेतन पाने के लिए मनुष्य जाति को नष्ट करने का आविष्कार न करें। वैज्ञानिक को पहले आध्यात्मिक होना चाहिए ताकि वह इस तत्त्व ज्ञान को समझ जाए कि कर्म का फल भोगना पड़ता है। जैसा कहा है –

''कर्म-२ जो करेगा तू वही फिर भोगना भरना।''

इस समझ के कारण वह अशुभ कर्म नहीं करेगा।

आज हर देश का वैज्ञानिक राजनेताओं के आधीन है और उनकी इच्छा के अनुसार वह आविष्कार करता है। अतः राजनेता अधिकतर उनसे मनुष्य जाति को विनाश करने वाले शस्त्रों का आविष्कार करवाते हैं यानी आज का वैज्ञानिक स्तन्त्र नहीं है अतः यदि वह चाहे कि मनुष्य जाति के कल्याण के लिए ही आविष्कार करूं तो नहीं कर सकता। इसलिए सब देशों के वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे एक संगठन बनाए और वह संगठन ही सोच समझ कर मुनष्य जाति के कल्याण के लिए आविष्कार करवाए, तभी ये वैज्ञानिक अपने कर्त्तव्य का उचित पालन कर

सकते हैं। मैं यह वैज्ञानिकों को मनुष्य समाज के प्रति कर्त्तव्य बताने की कोशिश कर रहा हूँ और वैज्ञानिक सज्जनों का धर्म यही समझता हूं कि वे अपने आणविक शस्त्र व मनुष्य को नष्ट करने वाले आविष्कारों को एक संगठन बना कर नष्ट करें और मनुष्य समाज के सुख सुविधा के लिए नए–२ आविष्कार करें। यह वैज्ञानिक संगठन विश्व स्तर का हो और वह यह निर्णय ले कि आज के वातावरण के लिए, बेहतर जीवन जीने के लिए, अधिक सुन्दर अस्तित्व के लिए क्या सहायक हो सकता है? इस प्रकार मेरी समझ के अनुसार आज के वैज्ञानिक का यह कर्त्तव्य ही उनका परम धर्म है।

दूसरा आज तक मनुष्य जाति को नष्ट करने के जितने देशों ने शस्त्रों का आविष्कार कर रखा है, उन सबको नष्ट करने का कार्य भी यह संगठन करवाए। ताकि मनुष्य जाति जो आज के विनाशकारी शस्त्रों के आविष्कारों से भयभीत है, वह इस भय से मुक्त हो जाए। अतः जब तक वैज्ञानिक संगठन नहीं बनायेगें, तब तक वह स्वतन्त्र नहीं होंगे और बिना संगठन के राजनेता जो अध्यात्म के रहस्य को नहीं जानते, वे वैज्ञानिकों को अपना गुलाम बना कर विनाशकारी आविष्कार करवाते रहेंगे। अतः ये वैज्ञानिक अपना संगठन बनाकर ही मनुष्य जाति के सुख, आनन्द व प्रसन्नता के लिए ही आविष्कार करें? वैज्ञानिक यूं ही अन्धाधुंध खोज कर रहे थे और अचानक ही बहुत बड़े आविष्कारक बन गए। जैसे अणु बम आदि अनेक खतरनाक शस्त्र बना लिए। अब इन वैज्ञानिक सज्जनों का कर्त्तव्य है कि वे इन आणविक शस्त्रों व अन्य विनाशकारी हथियारों को नष्ट करने का प्रयास करें। जैसा एक गाने में कहा गया है –

''तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।''

मेरी यह बात आपके तथाकथित राष्ट्रवाद, कम्यूनिजम, प्रजातंत्र इन सबके विरूद्ध जाती है। इन सबका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि अब तो मनुष्य जाति ही खतरे में है।

अध्यात्म की मंजिल सुख शान्ति व आनन्दमय जीवन की है और विज्ञान ऋद्धि, सिद्धि व नए–२ आविष्कारों की खोज है,

लेकिन वैज्ञानिकों की अन्तिम अवस्था मानसिक व आत्मिक शान्ति न होने के कारण दुखमय गुजरती है। इसलिए मेरा यह अनुभव है कि विज्ञान की खोज मनुष्य के लिए हितकारी हो। यह विज्ञान की खोज मनुष्य के विचार व संस्कारों पर निर्भर करती है। जैसे घटिया विचारों का वैज्ञानिक मनुष्य के विनाशकारी शस्त्रों का आविष्कार करेगा और अच्छे विचारों वाला वैज्ञानिक मनुष्य के सुख–सुविधा व कल्याणकारी वस्तुओं की खोज करेगा। इसलिए मैंने यह लिखा है कि आज का मनुष्य वैज्ञानिक व आध्यात्मिक दोनों हो, क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान जिस वैज्ञानिक को होगा, वह कभी भी मनुष्य जाति के विध्वंसकारी शस्त्रों का आविष्कार नहीं करेगा। यह विषय बहुत बड़ा है। इस कार्य को कोई अकेला वैज्ञानिक नहीं कर सकता, अतः राजनेताओं के दबाव से मुक्त होने के लिए पूरे विश्व के वैज्ञानिकों का एक संगठन होना अति अनिवार्य है। यह संगठन ही मनुष्य जाति की महान सेवा कर सकता है। मुझे यह विश्वास है कि मेरे विचारों की यह विकिरण धारा विश्व के वैज्ञानिकों के लिए समय आने पर जागति का काम करेगी। वैज्ञानिक विशेष भाग्य और संस्कार लेकर इस लोक में आते हैं। अतः यदि ये विज्ञान के साथ आध्यात्मिक भी बन जाए तो सोने में सुगन्ध वाली बात होगी। वैज्ञानिक वस्तु के साथ प्रयोग करता है जबकि आध्यात्मिक अपने निज रूप के साथ प्रयोग करके परम आनन्द और परम शान्ति का जीवन जीता है।

मेरा कहने का भाव यह है कि वैज्ञानिक मनुष्य जाति की सुख सुविधा के लिए आविष्कार करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करे और मनुष्य जाति को विनाश से बचाएं। और उनका धर्म यह है कि वे इस पर विचार करें कि उन्हें यहां सदा नहीं रहना अतः वे अपने निज रूप का अनुभव भी करें कि वे कौन हैं? और कहां से आए हैं और कहां जायेंगे और उनके अन्दर यह आविष्कार करने वाला तत्व क्या है? यानी स्वयं का अनुभव करना भी बहुत जरूरी है।

(10)

पुलिस का कर्त्तव्य और धर्म

हर देश में सरकार के तीन भाग होते हैं जो देश की व्यवस्था को बनाए रखते हैं। 1. कानून बनाने वाला 2. कानून तोड़ने वालों को पकड़ने वाला 3. न्याय करने वाला। पुलिस कर्मचारियों का काम कानून तोड़ने वालों को पकड़ना और उनको न्याय करने वालों के सामने पेश करना है। यहां प्रजातन्त्र शासन होने के कारण राजनेता जो कानून बनाने वाले हैं, वे पुलिस को अपना काम ईमानदारी से नहीं करने देते। यदि कोई अपराधी, राजनेता को अपना मत देने वाला है और पुलिस उसको पकड़ती है तो राजनेता पुलिस पर दबाव डालता है कि इसे मत पकड़ो यानी दोष मत लगाओ। पुलिस अधिकारी, राजनेता से डरकर कानून तोड़ने वाले को छोड़ देता है। एक तो यह कारण है कि पुलिस यदि चाहे कि वह अपना कर्त्तव्य ईमानदारी से करे तब ये कानून बनाने वाले राजनेता पुलिस के काम में दखल डालता है। अतः पुलिस वालों के लिये यह समस्या है कि वह चाह कर भी ईमानदारी से काम नहीं कर सकते। दूसरा कारण कानून तोड़ने वाला पुलिस को लालच देकर बच जाता है। यह बात सबसे बड़ी है। मनुष्य चाहे जिस क्षेत्र में काम करे वह घूसखोरी का शिकार आसानी से हो जाता है। यह मनुष्य की पांच कमजोरियों में से एक है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार। आज हमारे देश में ही नहीं, लगभग सारी दुनिया में ही पुलिस पोशाक पहनकर, हाथ में डंडा लेकर दिन दहाड़े आम लोगों को लूट रहे हैं। जो लूट–पाट को रोकने वाले थे, वही लुटेरे हो रहे हैं, फिर क्या किया जाए? अर्थात् जब बाड़ ही खेत को खा रही है तब खेत का क्या हाल? बड़े अधिकारियों को घर बैठे ही अपने आप अपना भाग या

हिस्सा मिल जाता है। जब सभी ऊपर से लेकर नीचे तक लूट–पाट में लगे हों तब सोच लो कि मनुष्यता का क्या हाल होगा? जैसे आप रोज समाचार पत्रों में पढ़ते हो कि बड़े–२ गबन के मामलों में राजनेताओं का हाथ होता है। तब एक पुलिस का सिपाही 50-100 रूपये ले लेता है तो कौन सी बड़ी बात है? यह बीमारी ऊपर से ही शुरू है तो मैं केवल पुलिस को अपना कर्त्तव्य सही न करने को दोषी नहीं मानता हूं। क्योंकि जैसे कहा है – ''**यथा राजा तथा प्रजा**''।

अतः मैं आध्यात्मिक मनुष्य होने के नाते आपको अपने अनुभव के अनुसार यह सलाह देता हूँ कि प्यारे पुलिस के सज्जनों। यह दुनिया कुत्ते की दुम है। आपको वेतन मिलता है। कोई राजनेता आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। अतः आप अपने कर्त्तव्य का पालन ईमानदारी से करो। पाप के भागी मत बनो। वह आज राजनेता है, कल वह सड़क मापता फिरेगा। इसलिए यदि वह आपको कर्त्तव्य का पालन करने से रोकता है तो डरो मत। आप लूट–पाट में शामिल मत होओ। हो सकता है आपको बड़े अधिकारी दबाते हों लेकिन सभी अधिकारी भी एक जैसे नहीं होते। अतः आपका कर्त्तव्य है कि जहां भी आप डयूटी कर रहे हैं और जिस पद पर काम कर रहे हैं, तो अपना काम ईमानदारी से करें। आपका रक्षक हर समय आपके साथ है। अतः आप अशुभ कर्म करने से डरें। यदि आप रिश्वत लोगे तो उसका फल आपको भोगना ही होगा। उस समय न तो आपका अधिकारी न कोई राजनेता न आपके परिवार के लोग जो आपकी कमाई खा रहे हैं, कोई नहीं भोगेगा। आपको खुद को उसका फल भोगना होगा। भगवान् या परमात्मा हमारे कर्मों का साक्षी है। हम और सबकी नजर से तो बच सकते हैं परन्तु उसको धोखा नहीं दे सकते हैं। अतः उससे डरो। मेरा भाव यह है कि यह घूसखोरी जो धन कमाते हैं यह खीर–खाण्ड नहीं है अपितु यह मीठा जहर है। इसका अन्त बहुत बुरा है। क्या बड़ा आदमी और क्या छोटा कोई कर्म के फल से बच नहीं सकता।

मैं थोथी शिक्षा नहीं देता हूँ, अनुभवी हूँ। 36 साल तक सेना में अधिकारी पद पर सेवा की है। 6 साल भर्ती ऑफिसर के पद पर कार्य किया है,जहां पर घूसखोरी खूब चलती थी। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया, परन्तु किसी से उसके मुआवजे में चाय पीना भी जहर समझा। अपनी तन्खाह में बहुत सन्तुष्ट रहा। आज 80 साल की आयु में मुझे कोई रोग नहीं है, बहुत खुशी का जीवन जी रहा हूँ। मेरे साथी जिन्होंने रिश्वत ली थी उनको बहुत दुर्गति से मरते देखा है।

पुलिस जनता के जान और माल की रक्षक है। उसकी बहुत बड़ी जिम्मेवारी है, एक सिपाही से लेकर बड़े अधिकारी तक। यह सेवा आपको परमात्मा की कपा से मिली है। अतः प्यारे पुलिस सज्जनों। भूलो मत आप लूट–पाट के लिए नहीं हैं, आप तो लूट पाट करने वालों को पकड़ने के लिए तथा मनुष्य समाज की सेवा व रक्षा करने के लिए हैं। पुलिस की कठिनाई मैंने बता दी परन्तु फिर भी आपकी ईमानदारी को कोई रोक नहीं सकता। यदि सुखी जीवन चाहते हो तो इस रिश्वत लेने को एक मीठा जहर समझ लेना खीर–खाण्ड नहीं। मैंने प्यार से आपको अपना अनुभव बता दिया है।

मेरे एक मित्र प्रान्त के सबसे बड़े पुलिस अधिकारी थे। उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली वह बहुत ही ईमानदार अधिकारी व धर्मात्मा सज्जन थे। आज वह धर्म गुरू बने हुए हैं और मनुष्य जाति को धर्म का उपदेश दे रहे हैं। तो कहने का भाव यह है कि आप पुलिस में सेवा करते हुए धर्मात्मा मनुष्य हो सकते हो। जैसे कहा है –

''जो रहिमन उत्तम प्रकति, का कर सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग।।''

अर्थात् जो सज्जन मनुष्य है, उन पर कुसंग का प्रभाव नहीं होता। जैसे चन्दन के पेड़ों पर ठण्डक के लिए सांप लिपटे रहते हैं परन्तु चन्दन पर उनके जहर का कोई प्रभाव नहीं होता। सांप जहर से भरे रहते हैं परन्तु चन्दन पवित्र ही रहता

है और अपनी प्यारी सुगन्ध देता रहता है। इसी प्रकार आप पुलिस में अपने किसी भी पद पर काम करते हुए अपनी ईमानदारी से काम करते हुए अपने शुभ कर्म व अपनी सज्जनता के गुण को कायम रख सकते हो। अतः सुबह उठकर डयूटी पर जाने से पहले परमात्मा को याद करके जाओ। अपने पुलिस के कर्त्तव्य का पालन करते हुए धर्मपूर्वक जनता के जान–माल की रक्षा करो और रिश्वत को जहर मानकर उसके लालच में न पड़ो। और यदि दूसरे ले तो उनके साथ शामिल न हो। अर्थात् आपका कर्त्तव्य पहले है और धर्म बाद में।

सामाजिक प्राणी होने के नाते हम अपने जीवन निर्वाह के लिए अपनी योग्यता के अनुसार वफादारी से काम करें और इस समाज को सुन्दर व स्वर्ग जैसा बनाने का यत्न करें। यह मनुष्य जाति के प्रति हमारी सेवा ही हमारा परम धर्म है। और पुलिस को तो सेवा करने के लिए भगवान् ने उसके हाथ में डंडा दिया है जिसका वह जनता की सेवा के लिए सही प्रयोग कर अपने कर्त्तव्य का उचित पालन कर सकता है। अतः वह देश व समाज के नियम को तोड़ने वाले, जनता को दुख देने वाले, मनुष्य की लूटपाट करने वाले व उसके जान–माल को खतरा पैदा करने वालों को दण्ड दिलवाकर अपने डण्डे व बन्दूक आदि शस्त्रों का सही सदुपयोग करे तथा अपने निजि स्वार्थ के लिए जनता को डराकर लूट–खसोट न करें। आप यह बात हमेशा याद रखें कि आप समाज के रक्षक हैं, भक्षक नहीं। इस प्रकार मैंने अपने टूटे–फूटे शब्दों में आपको अपने कर्त्तव्य के बारे में बताने का प्रयास किया है, क्योंकि मुझे मनुष्यता से प्यार व सहानुभूति है। अतः पुनः आपको यही चेतावनी देता हूँ कि आप अपने वेतन में सन्तोष रखें और इस हेरा–फेरी, लूट खसोट से बचें, जिसका अन्त बुरा है। मैं जानता हूं कि आपका अधिक ताल्लुक झूठे, बदमाश, चोर व ठगों से पड़ता रहता है और उनके विचारों का प्रभाव आप पर पड़ता है अतः इनके विचारों के प्रभाव से बचने का तरीका यह है कि आप किसी अनुभवी

महापुरूष के सत्संग से थोड़ा ध्यान – योग का तरीका सीख लें और सुबह–शाम कुछ समय निकालकर यह ध्यान योग करें, इससे आपके विचार सुन्दर रहेंगे और आप गलत काम करने से बचे रहेंगे। किसी महापुरूष के सत्संग में बैठकर यह बात समझ लें कि :–

''कर्म जो जो करेगा तू वही फिर भोगना भरना।''

''कर्म गति टारी नाहिं टरे।''

अपनी गरज या स्वार्थ के लिये किसी को जो लूटेगा तो खुद भी समय आने पर वह लूटा जायेगा। यह कर्म की समझ सत्संग से आयेगी। बात नीयत की है। डयूटी में यदि अधिकारी की आज्ञा से जो भी काम किया जाता है और नियम के अनुसार जो कुछ किया जाता है, वह पाप या दोष नहीं है। बात तो अपनी खुद की गरज या स्वार्थ की है।

(11)

व्यापारियों का कर्त्तव्य और धर्म

इस युग में मनुष्य की शिक्षा और सभ्यता के साथ–२ व्यापार में भी बहुत उन्नति हुई है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि, विवेक तथा परिश्रम से इस व्यापार को बहुत बढ़ाया है। उसने एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक माल पहुंचाने के नए साधन, ढंग व तरीके बनाए हैं। पहले बैलगाड़ी, ऊंट, खच्चर आदि के साधन से जो माल एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था, वह अब मोटर, रेल, पानी के जहाज तथा हवाई जहाज आदि के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा रहा है। माल की जहां जरूरत होती है, टैलिफोन पर बातचीत करके तुरन्त वहां पहुंचा दिया जाता है। यह तो इस युग में व्यापार सम्बन्धी वद्धि व उन्नति की विशेषता है।

परन्तु दूसरी तरफ व्यापारी सज्जन अपने लोभ, लालच के कारण हर वस्तु में मिलावट करने का जो काम कर रहे हैं, वह व्यापारी सज्जनों की बहुत बड़ी गिरावट है। यहां तक की खाने–पीने व दवा इत्यादि की वस्तुओं में मिलावट करके वह मनुष्य जाति को रोगी बना रहे हैं। आज हर वस्तु में मिलावट है। इस विषय में व्यापारी अज्ञानी है। वह समझता है कि मैं दूसरों को धोखा दे रहा हूँ, परन्तु वह यह नहीं जानता कि वह यह धोखा अपने आपको दे रहा है। यद्यपि सरकार ने मिलावट करने वालों के लिए कानून भी बना रखे हैं, परन्तु यहां भी व्यापारी ले देकर इस सजा से बच जाते हैं। परन्तु एक कानून ऐसा भी है, जिससे कोई बच नहीं सकता है वह है भगवान् का कानून या Law of nature जैसे कहा है –

जैसी करनी वैसी भरनी

''कर्म गति टारी नहीं टरे।''

इस बात का व्यापारी को ज्ञान नहीं। वह सोचता है यह तो कहने सुनने की बात है। वह सबको यहां से जाते हुए देखता है। सब खाली हाथ जाते हैं और किसी को कल का भरोसा नहीं है। परन्तु उन्हें अपना मरना नजर नहीं आता है।

मैं लगभग 1973 में गुहाटी (आसाम) में भर्ती ऑफिसर था। मैं स्थल व जल सेना के लिए जवान भर्ती करता था। वहां एक मारवाड़ी सेठ बहुत धनवान था। वह बीमार था। उसको इलाज के लिए बाहर सब देशों में ले गए, परन्तु कोई इलाज नहीं हुआ। उसके बारे में सुनकर मेरा भी उसको देखने का विचार हुआ। मैं उसकी कोठी पर गया। वहां उसकी हालत देखी, बातचीत की और मेरे अनुभव में आया कि यह अपने अशुभ कर्मों का फल भोग रहा है। मैंने उससे कुछ कहा जो उसको ठीक लगा और उसने इच्छा की कि आप सप्ताह में एक बार मुझे मिल जाया करें। मैं आपके आने–जाने के लिए कार भेज दूंगा। खैर, बात लम्बी है। भाव यह है कि मैंने उसे कर्म फिलोस्फी के बारे में समझाया और बताया कि उसने जो जीवन

में किया है, उसी का वह फल भोग रहा है। उसने वह बात समझ ली। तो बात स्पष्ट है कि मनुष्य धनवान बनने की कोशिश करे, अच्छी बात है परन्तु बात उस नीयत की है जिस नीयत से वह धन कमाता है। यदि मनुष्य का कोई शुभ कर्म हो और जीवन में किसी महापुरूष का संग हो जाए, तभी वह अशुभ कर्मो से बच सकता है, तब उसको होश हो जायेगा कि –

''जायेगा जब तू यहां से कोई न तेरा साथ होगा।
दो गज कफन का टुकड़ा तेरा लिबास होगा।।

प्यारे व्यापारी सज्जनों। खूब कमाओ, खाओ और खिलाओ परन्तु आप यह न भूलो कि आप इस मनुष्य समाज में पैदा हुए हो और यह व्यापार (Business) आपका धन्धा है। धोखे से या घटिया नीयत से जो धन कमाओगे, उसका फल आप भोगोगे। आपकी पत्नी, बच्चे इसमें साथ नहीं देंगे। आपको खुद को कर्म का फल भोगना होगा।

एक दूसरा उदाहरण है कि मेरे गांव के पास एक शहर है। वहां से मैं एक दुकान से घर का सामान कपड़ा इत्यादि लाता था। वह व्यापारी बहुत सज्जन व जाति से ब्राह्मण था। बुढ़ापे की उम्र में जब उसने अपना काम–काज बच्चों को सौंप दिया था तब वह अपने घर में ही रहता था। परन्तु कभी–२ अपनी दुकान पर आ जाता था। एक दिन जब मैं बाजार गया तब वह बूढ़ा पण्डित जी दुकान पर बैठा हुआ था। मैंने देखा कि उसके हाथ और पैरों में कई सफेद पट्टियां बन्धी हुई थी। मैंने उस पण्डित जी को नमस्कार कर पूछा कि पण्डित जी आपने ये इतनी पट्टियां क्यों बांध रखी हैं? तब उस पण्डित ने दुकान में चारों तरफ देखा और उसे कोई नजर नहीं आया तब वह ध ीरे से बोला – कप्तान साहब मैं बहुत पापी मनुष्य हूं। मैने कहा – पण्डित जी। आप तो बहुत सज्जन हैं, फिर ऐसा क्यों बोल रहे हो? उसने कहा – कप्तान साहब। मैंने लोगों को बहुत झूठ बोल–२ कर लूटा है। पांच रूपये के कपड़े को 25 रूपये में झूठ बोलकर बेचता रहा हूँ। आखिर जब मैंने उससे बन्धी

हुई पट्टी का कारण जानना चाहा तो उसने कहा कि आजकल मैं घर में आराम करता रहता हूं। लेकिन जैसे ही मैं सोने की कोशिश करता हूँ तो नींद आते ही स्वपन में कोई ग्राहक कपड़े की दुकान में आ जाता है और वह कपड़े का पूरा थान उठा कर भागता है तब मैं उसके पीछे उसको पकड़ने दौड़ता हूँ। उस समय मैं कभी कुर्सी, कभी मेज और कभी किसी और जगह उलझ कर गिर जाता हूँ जिससे यह चोटें लग जाती हैं। यह सब मेरे अपने बुरे कर्मो का फल है जो बुढ़ापे में भोग रहा हूँ।

आप समझ गए होंगे कि पंण्डित जी ब्राह्मण परिवार के थे और उसके यह संस्कार थे कि झूठ बोलना पाप है। अब उसने धन्धा व्यापार का कर लिया जिसमें झूठ बोले बिना काम नहीं चलता और मन से विचार करते रहे कि मैं यह पाप कर रहा हूं। अब जब उनका शरीर कमजोर हो गया तब मन भी कमजोर होता गया। इसलिए जब वह सोते थे तो स्वपन में उनके वही व्यापार के संस्कार सामने आते थे जिनको वह सच समझ कर कपड़े का थान लेकर भागने वालों के पीछे दौड़ता था लेकिन बूढ़ा शरीर होने के कारण किसी चीज में उलझ कर गिर जाता था। इसका कारण यह है कि पण्डित जी ब्राह्मण थे और उसके मन में यह संस्कार थे कि झूठ बोलना पाप है और व्यापार में उनको झूठ बोलना पड़ता था। और यही संस्कार उसके मन में थे जो उसको स्वपन में तंग करते थे। बाहर से कोई ग्राहक आकर उसका थान लेकर नहीं भागता था, यह उसको भासता था जो सत्य नहीं था। इसी को धर्म में काल व माया कहा जाता है। अब उनके परिवार के सदस्यों ने जिन्होंने उसकी कमाई खाई थी, वे उसकी कोई सहायता नहीं कर सकते थे। तो प्यारे व्यापारी सज्जनों। यह बात मैं जानता हूँ कि व्यापार में आपको कुछ झूठ बोलना ही पड़ता है क्योंकि सरकार ने नियम ही ऐसे बना रखे हैं कि यदि आप बिल्कुल सच बोले तो आपकी अधिक कमाई सरकार के पास ही चली जायेगी। अब इस अशुभ कर्म से बचने के लिए आप कुछ प्रतिशत भाग

जरूरतमन्दों की सेवा में लगाए ताकि उनके आशीर्वाद से आपको कुछ लाभ हो सके।

तो व्यापारी सज्जनों का कर्त्तव्य यह है कि वह ईमानदारी से धन कमाएं, खुद खांये और जो धन जरूरत से ज्यादा हो उसे मनुष्य समाज की भलाई में लगाएं। क्योंकि मनुष्यों की सेवा ही भगवान् की सेवा है।

''बंड छक और नाम जप।'' (गुरूनानक देव)

''माल रखने को नहीं, लुटा दे गन्नी से।''

चट डाल मालो धन को, दमड़ी न रख कफन को।
जिसने दिया है तन को, वही देगा कफन को।।

कोड़ी-२ माया जोड़ी, लखी करोड़ी कहावे।
जब जम तेरी गर्दन तोड़े, कोड़ी काम न आवे।।

जल में बाढे नाव, घर में बाढे दाम।
दोऊ हाथ उलिचिए, यही सज्जन को काम।।

प्यारे व्यापारी सज्जनों। मैं यह नहीं कहता कि आप ध न न कमाओ। अपनी योग्यता के अनुसार खूब कमाओ, खाओ और खिलाओ। आपके पास अच्छा मकान, अच्छी दुकान, अच्छी गाड़ी इत्यादि सब कुछ हो परन्तु यह सब ईमानदारी की कमाई का हो। नहीं तो अन्त समय में जो भी धोखा–धड़ी करोगे उसके फल से बच नहीं सकोगे।

(12)

देश के अन्य विभिन्न वर्गों का समाज के प्रति कर्त्तव्य और धर्म

अभी तक मैंने पीछे जिन सामाजिक सज्जनों की चर्चा की है, केवल इन्हीं के कर्त्तव्य व धर्म से देश खुशहाल नहीं हो सकता क्योंकि इस मनुष्य समाज में और भी बहुत से सज्जन हैं जैसे किसान, मजदूर, कलाकार, दर्जी, कारीगर, चलचित्र बनाने वाले निर्देशक, कवि इत्यादि ये सभी अपने–२ स्थान पर जो भी कार्य समाज में कर रहे हैं, वे इतना मन लगा कर करें कि उनके काम को समाज के लोग पसन्द करें और समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो। ये सब अपने –२ काम को इतनी तल्लीनता से व मन लगा कर करें कि उनको अपना काम करते समय कोई ओर ख्याल न रहे। इसी को कर्मयोग कहा है – **''योग कर्मसु कौशलम्।''** (गीता) इस तरह मन लगा कर काम करने से काम करने वाले को अपने काम में बरकत होगी। जैसे एक मोची मन लगाकर सुन्दर व मजबूत जूती बनाता है तो उस मोची को अपने काम में बरकत होगी और दूसरा जो उस जूती को पहनेगा वह खुश होगा और उसकी जूतियों की जगह–२ प्रशंसा होगी।

एक उदाहरण देता हूँ मेरे गांव के नजदीक चुरू शहर में रेलवे स्टेशन के नजदीक एक रिवाड़ी का जूती की मरम्मत करने वाला मोची बैठता था। वह मोची जूती, चप्पल व बूटों की ऐसी मरम्मत करता था कि पता ही नहीं चलता था कि यह मरम्मत की हुई है या नई है। उस मोची की उसके इस काम से शहर में इतनी मशहूरी हुई कि शहर के लोग, क्लैक्टरी के अधिकारी और बाबू तथा कालिज के विद्यार्थी उसी से अपने

जूतों की मरम्मत करवाते थे और उसे दिन भर अपने काम से कोई फुरसत नहीं मिलती थी। वह मोची शाम को लगभग 300-400 रूपये लेकर उठता था।

इसी तरह आज से पहले जो पिक्चर बनाने वाले थे, वह ऐसी पिक्चर बनाते थे जो समाज के लिए आदर्श होती थी और उनके गाने ऐसे तहदिल से गाए जाते थे जो ह्रदय पर सीधा प्रभाव डालते थे, जबकि आज के निर्देशक अश्लील पिक्चर बनाकर समाज के आदर्शवाद को समाप्त कर रहे हैं। यह जो पिक्चर बना रहे हें, वह हमारे देश की संस्कति नहीं है, पश्चिमी देशों की संस्कति को अपने देश में फैला रहे हैं, जिससे हमारी अपनी संस्कति पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और यह धीरे–२ लुप्त होती जा रही है। अभिनेता और अभिनेत्रियों की पोशाक तथा उनके हाव–भाव, उनका चरित्र जो पेश किया जा रहा है, वह हमारी नई पीढ़ी के लिए हानिकारक है। जैसे पश्चिमी देशों में छोटी–२ बातों पर पति–पत्नी एक दूसरे को तलाक दे देते हैं, जो हमारे देश की संस्कति से मेल नहीं खाती। इसी तरह और भी हर काम में हमारे देश के लोग – पश्चिमी देशों की नकल कर रहे हैं जो हमारे भारतीय समाज के लिए घातक है।

मेरा कहने का भाव यह है कि यह समाज तभी सुन्दर बन सकता है जब लोग जहां पर जो भी काम कर रहे हैं वो उस काम को इतना सुन्दर व मन लगाकर करें कि काम करने वाले को उस काम में आनन्द आए और उसके काम से दूसरे लोगों को प्रसन्नता व लाभ मिले। बात किसी बड़े या छोटे पद की नहीं है, अपितु मनुष्य जहां काम कर रहा है, उसके काम की कुशलता, दूसरों की प्रसन्नता व समाज पर उसके प्रभाव की है।

उदाहरण के तौर पर इब्राहिम लिंकन जब पहली बार राष्ट्रपति पद के लिए चुने गए तब वह अपना पहला भाषण देने के लिए खड़े हुए तो उसी समय श्रोताओं में से एक सज्जन ने खड़े होकर कहा कि मिस्टर इब्राहिम लिंकन। यह बात मत भूल जाना कि आपके पिता जी हमारे जूते बनाते थे। यह बात उसने

इब्राहिम लिंकन को नीचा दिखाने के विचार से कही कि वह एक चमार का लड़का है और हम लोग शाही खानदान के डयूक व लार्ड हैं। इस पर इब्राहिम ने कहा कि मेरे पिता जी ने आपके जूते खराब तो नहीं बनाए थे? तब वह सज्जन बोला कि आपके पिता जी बहुत ही कुशल मोची थे। हम अभी तक उनको याद करते हैं कि उनके जैसे जूते अब कोई नहीं बनाता है। तब इब्राहिम बोले प्यारे सज्जन। आपका अति धन्यवाद है जो इस शुभ अवसर पर आपने मुझे मेरे पिता जी की याद दिलाई है। परन्तु जितने अच्छे मोची वह थे शायद मैं इतना योग्य राष्ट्रपति न बन सकूं।

भाव यह है कि यदि आप बहुत बड़े अधिकारी हैं और आपके काम से लोगों को खुशी नहीं हो या आप अपनी डयूटी तनाव में चिन्ता में, निराशा में या दुःखी होकर करते हैं तो लानत है आपके अधिकारी पद को। जैसे –

बड़े भए तो क्या भए जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

बड़े बड़ाई न करें, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुख से कब कहे, लाख टका मेरा मोल।।

अतः हम सब का कर्त्तव्य है कि हम समाज में अपनी–२ योग्यतानुसार सेवा करें और इस समाज को उन्नत व खुशहाल बनाएं, क्योंकि हम सब इस देश व समाज के ऋणी हैं। यह बात मां–बाप, परिवार, गांव, शहर, प्रान्त, देश और विश्व तक सभी पर लागू है क्योंकि हम सब इनके कर्जदार हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने–२ स्तर पर अपने कर्त्तव्य का पालन करे और धर्म का अर्थ यहां खुशी व शान्ति से है। लेकिन मनुष्य तभी सुख शान्ति का जीवन जी सकता है जब वह अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। देश के स्तर के लिए ऐसा समझें –

इन्सान हैं हम सब इस जहां के, है मजहब इन्सानियत हमारा
हम मनुष्य हैं इस विश्व के, यह लोक है निवास स्थान हमारा

इस प्रकार जो मनुष्य इस कर्त्तव्य और धर्म के विचार को जब तक नहीं समझता तब तक वह जीवन में खुशी, उमंग, उत्साह व सुख–शान्ति का जीवन नहीं जी सकता है। अब जहां तक धार्मिक सम्प्रदायों की बात है, लोग बहुत भ्रम व अज्ञान के कारण आपस में भेदभाव, लड़ाई–झगड़ा व पक्षपात के कारण दुःख व क्लेश का जीवन जी रहे हैं। अतः जब मनुष्य को अपने कर्त्तव्य व धर्म का ज्ञान हो जायेगा तब उसका मन पवित्र हो जायेगा और उसको हर जगह हर मनुष्य में वही नजर आयेगा जैसे कहा है –

''अब आदमी हमारी नजर में कुछ और है।
जब से सुना है यार लिबासे बसर में है।।''

अतः इस मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च आदि के झगड़े में मत पड़ो। परमात्मा आपके अन्दर है। उसको सत्संग में बैठ कर जिस गुरू में आपका विश्वास है, श्रद्धा है उससे समझो। क्योंकि धर्म अपने आपको अनुभव करने का नाम है।

(13)

मानव-जाति का समाज के प्रति कर्त्तव्य और धर्म

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है, समाज में ही पल कर बड़ा होता है, शिक्षा लेता है, विवाह करता है, नौकरी करता है यानी जीवन के सब खेल

समाज में रह कर ही करता है और अन्त में समाज में रहते हुए ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर चला जाता है। जैसे मछली पानी में जन्मती है, पानी में पलती है और अन्त में पानी में ही मर जाती है। अतः सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह जब बड़ा व समझदार बने तब अपनी योग्यता व समझ–बूझ के साथ मानव–समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य व धर्म का पालन करे, क्योंकि वह माता–पिता, गुरू, समाज व देश का ऋणी है जिस माता–पिता ने उसे पाल–पोस कर बड़ा किया है और उसे हर दुख–तकलीफ से बचाया है तो उसका यह पहला कर्त्तव्य बनता है कि वह उनकी आज्ञा में रहे, उन्हें खुश रखे और उन्हें किसी प्रकार की कोई तकलीफ न होने दे। इसके बाद जिस गुरू से उसने शिक्षा–दीक्षा ली है, उसके प्रति श्रद्धा–विश्वास रखना और उसके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलना भी उसका मुख्य कर्त्तव्य है। इसके बाद जिस समाज में वह रहता है, जिन लोगों ने उसे हर काम में सहयोग दिया है, जिसके साथ रहकर वह बड़ा हुआ है तो उसका यह महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वह उस समाज को सुन्दर व सुसंस्कत बनाए और उसकी बुराईयां व कुरीतियां दूर करे।

अब यदि कोई एक–दो आदमी इस समाज का सुधार करना चाहें तो बड़ा मुश्किल है, क्योंकि मुट्ठी भर समाज सुधारक इतने बड़े समाज का सुधार नहीं कर सकते हैं। यह तो कभी कोई हिम्मत वाला महापुरूष ही आता है जो अकेला समाज से लड़ता हुआ उसकी कुरीतियों को दूर कर जाता है। जैसे महर्षि स्वामी दयानन्द जी ऐसे महापुरूष हुए हैं, जिन्होंने उस समय समाज में फैली अनेक कुप्रथाओं को दूर किया। जैसे बाल–विवाह, पुनर्विवाह सती–प्रथा इत्यादि। हमारा समाज बहुत बड़ा है और इसमें बहुत लोग काम करते हैं। यह समाज मनुष्यों से बना है। चपड़ासी से लेकर राष्ट्रपति तक सभी इस समाज में पैदा होते हैं और आखिर चार भाई इसी ही समाज के उसको ठिकाने लगाते हैं। मजदूर किसान से लेकर करोड़पति

भी इसी ही समाज में पलते हैं। स्कूल मास्टर से लेकर कॉलिज के शिक्षक और वैज्ञानिक इसी ही मनुष्य समाज में पलकर बड़े बनते हैं। वैद्य, हकीम, डॉक्टर आदि सभी समाज के प्राणी हैं, ग्राम पंचायत के पंच–सरपंच से लेकर देश के प्रधानमन्त्री, एम. एल.ए., एम.पी. आदि सब मन्त्री और जो सरकार में काम करने वाले हैं, सभी इस मनुष्य समाज के कर्जदार हैं। सब अपने–२ स्थान पर रहते हुए जो भी सुधार समाज का कर सकें करें, तभी इस इतने बड़े मानव समाज का सुधार हो सकता है। अतः इन सबका यह परम कर्त्तव्य है कि ये सब अपनी–२ जगह पर ईमानदारी से काम करके समाज को कल्याणकारी बनाएं, तब यह मानव समाज इसी ही धरती पर एक स्वर्ग जैसा बन सकता है और मनुष्य अपने ऋण से मुक्त हो सकता है। जैसे कहा गया है–

नमो नमो नमो नमन पद मोटा।
नमन करा सो तरिया जी।।

1. **पहला नमन हमारे माता-पिता नै।**
   जिन हमें कोख से जाया जी।।
2. **दूजा नमन हमारी बहन भुआ नै।**
   जिन हमें गोद खिलाया जी।।
3. **तीजा नमन हमारी धरती माता नै।**
   जिन हमें पावं रखाया जी।।
4. **चौथा नमन हमारे गरूदेवा नै।**
   जिन हमें ज्ञान सिखाया जी।।
5. **पांचवां नमन हमारे देश की भूमि नै।**
   जिसका अन्न हमने खाया जी।।

संस्कत में इस बारे में ऐसा कहा है –

''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।''

कुछ सज्जन अपनी जाति–पाति में जो कमी या बुराई देखते हैं, उसका सुधार करते हैं और कहते हैं –

''जातीय अभिमान जिसमें कभी आया नहीं।
व्यर्थ ही जन्मा जिसने कौम को जगाया नहीं।''

परन्तु यह छोटे स्तर पर समाज का सुधार है, जो काबिले तारीफ है, परन्तु मेरा भाव तो यहां पूरी मनुष्य–जाति के सुधार का है। यहां एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है और वह यह है कि जो भी लोग समाज का सुधार करना चाहें, वह पहले अपने–२ दर्जे पर अपना सुधार करें। इसके बाद जाति, धर्म, राजनीति और पूरे देश की मानवता के सुधार की बात आती है। कहने का भाव यह है कि यह सुधार पहले अपना, अपने परिवार का, अपनी जाति–बिरादरी का, अपने गांव का हो और फिर अपनी–२ योग्यता के अनुसार इस मनुष्य समाज का सुधार करते हुए देश के समाज सुधार में शामिल हो इसलिए सब अपने–२ स्थान पर अपने कर्त्तव्य का पालन करें। धर्म–कर्म में पाखण्ड को हटाना, मानवता को एक करना, आपसी द्वेष को समाप्त कर आपस में प्रेम बढ़ाना, पूरी मनुष्य जाति का एक ध र्म बताना आदि यह सब बड़े स्तर के कार्य हैं, जिन्हें करता हुआ मनुष्य समाज के प्रति अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और पूरे मानव समाज को सुखमय व कल्याणकारी बनाने में अपना योगदान दे सकता है। अब मनुष्य जाति का धर्म है क्या? यह समझने वाली बात है।

धर्म :-

धर्म की बात समझाने के लिए महापुरूषों ने बहुत ग्रन्थ लिखे हुए हैं, बहुत पंथ व सम्प्रदाय बनाए हुए हैं, मन्दिर, मस्जिद व चर्च बनाए हुए हैं। धर्म–कर्म के स्थान यह मन्दिर, गुरूद्वारे, मस्जिद, गिरजाघर आदि किसी समय ठीक रहे होंगे। वहां गुरू, पीर, पण्डित, पुरोहित, पादरी जो धर्म का ज्ञान देते थे, यह उस समय ठीक थे। आज तो ये आपस में झगड़े की जड़ बन गए हैं और इनमें जो लोग जाते हैं, वे पुरानी लकीर पीट रहे हैं। इन स्थानों में रहने वाले या रोज पूजा–पाठ करने वाले धर्मात्मा दिखाई नहीं देते हैं। फिर मैंने धर्म का क्या मतलब समझा है या

अपने जीवन में अनुभव किया है? वह बताता हूं।

मैंने इस दुनिया में रहते हुए,अपने जीवन–निर्वाह के सब काम–काज करते हुए जीवन के आरम्भ से लेकर अब 80 साल की आयु तक एक उमंग, बेफिकरी व आनन्द की स्थिति का अनुभव किया है। इस जीवन को एक खेल समझा है और जीवन के हर खेल में इस आनन्द का अनुभव किया है। यह जो योग साधन करता आ रहा हूँ, यह केवल मन को समस्थिति में रखने का जीवन में एक अनुभव है। अतः योग, पूजा, पाठ, जप, तप, तीर्थ, व्रत, मन्दिर, मस्जिद आदि यह सब धर्म नहीं हैं, यह तो ध र्म को प्राप्त करने के सहारे हैं। यह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि मजहब यदि धर्म होते तो ये सब खुश व प्रेममय होते। उनको चिन्ता, फिकर, डर, भय न होता और इनके मन में शान्ति होती। कहने का भाव यह है कि मनुष्य का धर्म उसको हंसमुख बनाता है, निर्भय, निडर बनाता है। मनुष्य के मन में ही यह उमंग, बेफिकरी, प्रेम, ऋद्धि, सिद्धि सब भरी हुई है। जो मनुष्य अपने परिवार में पति–पत्नी, बाल–बच्चों के साथ रहते हुए, हर प्रकार का कार्य करते हुए अपने आप में इस प्रेम, आनन्द व उमंग का अनुभव करता है, उसको मैं धर्मात्मा मानता हूं। अतः यह सब मनुष्य के लिए आनन्द, प्रेम व उमंग से जीवन जीने के लिए है। आप दूर न जाएं, छोटे स्तर पर यह बात देख लें। घर– परिवार में आप जितने सदस्य हैं यदि सब प्रेम–प्यार से रहते हैं, एक दूसरे की सेवा करते हैं, अपनी–२ योग्यता के अनुसार एक दूसरे को सुख देते हैं और हंसते–मुस्कराते रहते हैं तो आप धर्मात्मा हैं।

धर्म मनुष्य के सुखी जीवन जीने की एक कला का नाम है। अपने मन पर पड़े हुए घटिया संस्कार मिटाने व सुन्दर संस्कार ग्रहण करने के लिए व मन को समस्थिति में रखने के लिए यह जितने यत्न, विधि–विधान हैं, सब अपनी–२ जगह मनुष्य की प्रकति के अनुसार ठीक हैं। परन्तु यह तो महापुरूषों ने कुछ नियम बनाए हुए हैं जिससे मनुष्य का वह आनन्द हर

समय कायम रह सके, मनुष्य की कमजोरी दूर हो सके और यह शरीर, मन व आत्मा से बलवान बन कर अपने मनुष्य जीवन का सफर सफलता–पूर्वक जी सके। इस लोक में मनुष्य को इस लोक का धर्म सिखाया जाता है। यह धर्म–कर्म की शिक्षा देने वाले महापुरूष यदि जीवन की पूर्ण कला का अनुभव रखते हैं तो यह हर मनुष्य को जो अपने दुख–तकलीफ लेकर इनसे मिलेगा, उसको सही मार्ग बता सकेंगे। उदाहरण के लिए यदि कोई महापुरूष ब्रह्मचारी है तो वह गहस्थी को पूरा ज्ञान नहीं दे सकता, क्योंकि उसे खुद इसका अनुभव नहीं है। इस आत्म–ज्ञान के अधिकारी तो कुछ विशेष मनुष्य होते हैं। परन्तु जीवन जीने की कला तो सब के लिए अनिवार्य है कि वह कैसे सुख से जिये?

यह जीवन जीने की कला किसी वक्त सतगुरू से सीखी जा सकती है। यह बात देखने में बहुत छोटी है, परन्तु है बड़ी। आप खुद अपने जीवन के अनुभव से देख लो और समझ लो। यदि आप हर समय हर स्थिति में चिन्तामुक्त रहकर, हंसते–मुस्कराते हुए जीवन जी रहे हैं तो समझ लो कि आप धर्मात्मा हैं। मैं यह नहीं कहता कि आप योग – साधन, ध्यान, भजन, सुमिरन, दान–पुण्य आदि न करो। यह तो वहां तक पहुंचने के रास्ते हैं। मुख्य बात प्रसन्नता की है जो हर समय रह सके। यदि आप बड़े सेठ हो, आई.ए.एस. अधिकारी या और भी बड़े अधिकारी हो और आपके आधीन कोई मनुष्य गलती करके आपके समाने आए तो गुस्सा न करके सहज ही मुस्कुराते हुए उसको उसकी गलती का अहसास करा दे और आपके मनका सन्तुलन (Temper) न बिगड़े तो समझ लेना आप धर्मात्मा बन गए हैं। यही बात घर–परिवार में है। यदि पति–पत्नी बच्चों या नौकरों पर गलती करने पर गुस्सा न करके उन्हें प्यार से मुस्कराते हुए समझा दें तब वो धर्म का अनुभव कर रहे हैं और धर्मात्मा बन गए हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम धर्म का सहारा क्यों लें?

वास्तव में जो मनुष्य अपने जीवन में किसी भी प्रकार के अभाव को महसूस करता है, वही इस तरफ आता है। और आजकल के इन महापुरूषों का भी यही कहना है कि यह लोक काल का है। यह संसार दुःखों का घर है। यहां कोई सुख–सुविधा नहीं है। यह जीवन चार दिन का है। यहां सदा नहीं रहना है। अतः अपना परलोक बनाओ। प्यारे सज्जनों। मेरा तो इस विषय में यह अनुभव है कि इस लोक का जीवन अति सुख, प्रसन्नता, आनन्द व प्रेम का है। यह जो बात महापुरूषों ने कही है या कह रहे हैं, हो सकता है उनको यहां जीवन में दुःख व कष्ट का अनुभव रहा हो और वह सच कह रहे हों। परन्तु मेरी दष्टि से ये सुख–दुःख केवल मन के विषय हैं। जब कोई बात आपके मन के अनुकूल हो जाए तो सुख और प्रतिकूल हो जाए तो आप दुःख का अनुभव करते हैं। यह सब दुःख– तकलीफ मनुष्य के अपने ही शुभ–अशुभ कर्मों का फल होता है। जब मनुष्य को गुरू कपा से यह ज्ञान हो जाता है तब इसकी हाय–२ बन्द हो जाती हे और वह इन्हें खुशी–२ भोग लेता है। तब उसे इस पूरी प्रकति में पशु, पक्षी, मनुष्य सब एक गजब की रासलीला करते हुए नजर आयेंगे, दुःख नाम की कोई बात उसे महसूस नहीं होगी। उसे चारों तरफ खुशी, आनन्द की वर्षा होती मालूम होगी। परन्तु यह सब ज्ञान आपको कोई वक्त गुरू ही समझायेगा। और यह समझ, विवेक व अनुभूति आपको धर्म से ही मिलेगी।

अब रही बात परलोक के साधन या वहां के सफर की तो वह भी इसी ही जीवन में यह लोक सुन्दर बनाते हुए थोड़ा–२ साधन–अभ्यास करते हुए अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि यह मनुष्य जन्म ही इस लोक में पूर्ण मिलकर खेलने के लिए है और ज्ञान–विज्ञान का अनुभव करने के लिए है। मेरे साथ तो ऐसा हुआ कि योग में ही सब योग सध गए और दीन–दुनिया दोनों सहज ही बन गए। परन्तु आम मनुष्य की प्रकति भिन्न होती है। अतः इन सब बातों के लिए जीवित, पूर्ण विवेकी व अनुभवी महापुरूष की विशेष आवश्यकता है। जैसे

आदि गुरू कबीर के पंथ के विषय में शब्द है–

कहत कठिन समझत कठिन, लखत कठिन गुरू ज्ञान।
चित्त में कठिनाई बसी, कैसे करे कोई बखान।।

सहज योग की सहज विधि, सहज युक्ति से पाय।
सहज वत्ति जब लग नाहि, सूझे कैसे उपाय।।

मार्ग भूल कबीर का, चले न गुरू के पंथ।
पंथाई सो नाम का, अटका पढ़ कर ग्रन्थ।।

पंथ राह है गुरू की, चल सतगुरू के पंथ।
घट में पंथ की सुगम विधि, नहीं यह लिखा ग्रन्थ।।

घट में चल गुरू पंथ नित, धार गुरू की आस।
सत्संग में बैठकर, सुरत शब्द अभ्यास।।

साधन सहज सहज सदा, नहीं सो खिंचातान।
बिन गुरू गम पावे नहीं, सुलभ सुलभ सोहान।।

संसार में अध्यात्म व आत्म ज्ञान को अनुभव करने के लिए कबीर पंथ सबसे बड़ा और आसान मार्ग है। यह सुरत शब्द अभ्यास है जो अति सहज और आसान है। इस मार्ग पर बूढ़ा, युवा, स्त्री, पुरूष सब चल सकते हैं। इस लोक में खुशी व प्रसन्नता को प्राप्त करते हुए यही रास्ता परलोक तक जाने का अति सुगम व आसान है।

शब्द

''सात द्वीप नौ खण्ड में सतगुरू तेरा ही पसारा।''

गुरू जैसा दाता कोई नहीं, सब जग मांगनहारा।
क्या राजा क्या बादशाह, सबने हाथ पसारा।।

कागज की नौका बनी, बीच लोह भारा।
सतगुरू पार उतारहि, सब सन्त पुकारा।।

पत्थर को क्या पूजे, या में क्या पावें।
अड़सठ का फल एक है, घर साध बुलावे।।

अपराधी मनवा तीर्थ चला, क्या तीर्थ तारे।
तेरे मन का दाग धुला नहीं, क्यों नीर उछाले।।

कहत कबीर धर्मदास को, सुनो भगत हमारा।
सो ही जावे भव पार, जो गहे शब्द हमारा।।

यहां गुरू भक्ति मुख्य है जिसमें गुरू के सत्संग में बैठकर गुरू की बात ध्यान से सुनना, गुनना और उस पर अमल करना है। इसमें सब कुछ आ जाता है। अतः यह सब कुछ जो लोक–परलोक का जीवन और सहज साधन विधि है, सब गुरू के आधीन है। इसे गुरू से सीख कर, अनुभव करके दूसरों को बांटना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है।

(14)

धर्म विश्वास और अनुभव का विषय है

मैं 1962 से गुरू आज्ञा से यह सत्संग का काम करता आ रहा हूँ। मेरे गुरू पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के शिष्य लगभग देश के सभी भागों में रहते हैं। मैं 1975 में सेना से 36 वर्ष सेवा करके पैंशन आ गया था। पहले तो मेरे पास प्रेमी सज्जनों के अपनी दुख, तकलीफ व योग–साधन के बारे में पत्र आते रहते थे और मैं उनको आशावादी विचार दे देता था, जिससे आस–विश्वास से उनके काम हो जाते थे। अब आजकल टेलिफोन की सुविधा हो गई है अतः फोन पर ही बातचीत हो जाती है। सुबह 6 बजे से शाम के 8 बजे तक फोन आते रहते हैं। प्रेमी अपने शरीर, मन व परिवार की समस्याओं के बारे में तथा योग–साधन के अभ्यास के विषय में पूछते रहते हैं। मैं उनको वही आशावादी विचार देता रहता हूँ और उनके ही विश्वास व भरोसे से उनके काम बन जाते हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे अन्दर कोई सिद्धि–शक्ति नहीं है। यह उनका ही विश्वास होता है कि गुरू जी ने कहा है कि काम हो जायेगा और उनका काम बन जाता है। कुछ लोग प्रसाद ले जाते हैं और उससे उनका काम बन जाता है। यह भी उनका ही विश्वास होता है। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि धर्म विश्वास का विषय है। कई सज्जन दूसरों के देखा–देखी प्रसाद ले जाते हैं। और उनका काम नहीं होता। वे कहते हैं कि मैनें आपसे प्रसाद लिया था या आपने कहा था कि तेरा काम हो जायेगा, परन्तु मेरा काम नहीं हुआ। मैं उनको पूछता हूँ कि भाई। आपका ध्यान बनता है क्या? यह इसलिये कि जिसका ध्यान बन जाए, उसकी इच्छा–शक्ति बढ़ जाती है और जो उसकी इच्छा होती है वह

पूर्ण हो जाती है। परन्तु यदि मनुष्य का पूरा विश्वास हो तो ध्यान न भी बने तब भी उसका काम बन जाता है। जहां विश्वास है, वहां इस ध्यान योग की जरूरत नहीं है। जैसे कहा है – **''विश्वासम् फलदायकम्''।**

मेरे गांव में जहां मैं रहता हूँ, मुझे लोग नहीं जानते हैं कि मैं आध्यात्मिक मनुष्य हूँ। यहां मेरा जीवन हर तरह से रस, खुशी लेते हुए आनन्द, मस्ती व उमंग से गुजर रहा है। इसका कारण मैं एक बार सेना से छुट्टी लेकर अपने गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के दर्शनार्थ होशियारपुर गया था। वैसे मैं जब भी वहां जाता था तो मेरे गुरू जी मेरे साधन–अभ्यास की बात थोड़े में ही पूछ कर कहते थे कि और नौकरी में कोई कठिनाई की बात? तो मेरा उत्तर होता था कि महाराज, सहज में ही सार शब्द गूंजता रहता है और मेरी कम्पनी हर काम में प्रथम आती है। अतः मुझे शाबाशी और आपकी कपा से इनाम मिलते रहते हैं। बड़ा ऑफिसर खुश रहता है और नीचे वाले सब खुश रहते हैं। तब वह कहते कि अपने घर जाओ और अपने परिवार की देखभाल करो। परन्तु उस दफा मैं तीन दिन तक वहां रहा। उस समय मानव–मन्दिर नहीं बना था। महाराज जी लगभग दिन के 9 बजे पण्डित नारायणदास की लकड़ी कोयले की टाल में आ जाते थे और वहां ही आने–जाने वालों से मिलते थे। मैं धर्मशाला में रहता था। सुबह उनके पास चला जाता और दिन भर वहीं रहता था। वह मुझे कुछ बताते रहते थे। तीसरे दिन उन्होंने मुझे देखकर कहा कि मैं तेरे को गुरू बना दूंगा, क्योंकि जब तक तू मेरे पास रहता है, मैं तेरे को कुछ न कुछ बताने को मजबूर हूं। तेरे को जो कुछ सत्संग का ज्ञान है, वह मिल गया है और मेरे सत्संगों की पत्रिका 'मनुष्य बनो' और 'शिव' तेरे को वहां मिलती रहती है। जो कुछ किसी सन्त के संग से मिलना था, वह तेरे को मिल गया है। यहां मेरे पास बैठने का मतलब है मेरे को बेमतलब तंग करना। अतः तेरे को गुरू बना देता हूं, तब तुझे मालूम होगा। यानी

गुरूवाई पर उन्होंने मुझे एक सत्संग दे दिया और गुरूवाई का रहस्य समझा दिया। उन्होंने जो कहा वह बात अब मैं लिखूंगा नहीं क्योंकि यह बात बहुत ऊंची है। आम आदमी इसका भेद तो समझेगा नहीं और वह भ्रम में पड़ जायेगा।

मुझे उस सत्संग से यह लाभ हुआ कि मुझे स्वपन में भी गुरू बनने का विचार नहीं आया। अब मैं उस सत्संग का लाभ उठा रहा हूं और अति आनन्द का जीवन जी रहा हूं। मैं सत्संग देता हूं और मेरा सत्संग गुरू का काम करता है। जो मेरा सत्संग ध्यान से सुनते हैं, उनको अध्यात्म ज्ञान के विषय में कोई भ्रम व शंका नहीं रहते और अधिकारी को अपनी लगन व योग्यता के अनुसार सत्संग में बैठे–२ ही नाम की अनुभूति हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कुछ करता हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं होता। मेरे से जिस स्थिति में मैं रहता हूं Radiation (विकिरणधारा) निकलती रहती है। और जो इस चीज का ग्राहक (इच्छुक) होता है, उस पर इसका प्रभाव होता है और उसको अनुभूति हो जाती है। यह योग्यता अनुभूति करने वाले सज्जन में होती है। उसकी लगन, इच्छा, विश्वास व प्रेम से क्षण में ही उसे अनुभूति हो जाती है। कुछ देर लगने की बात नहीं है।

एक बार सन्त ताराचन्द जी महाराज (हरियाणा) भीलवाड़ा सत्संग देने गए थे। वहां एक वी.पी. अग्रवाल नाम के सज्जन ने सन्त ताराचन्द जी के सामने मेरी प्रशंसा करके मेरी गुड्डी चढ़ा दी और कहा कि वे बहुत बड़े महात्मा हैं और साथ ही दो चार प्रमाण दे दिए जो उसके साथ घटित हुए थे। सन्त ताराचन्द जी बहुत पवित्र मन के सादे महात्मा थे। उन पर इस बात का प्रभाव पड़ा और उन्होंने मुझे भिवानी वार्षिक सत्संग में बुलाया। उनसे बातचीत हुई और उन्होंने मुझसे वहां सत्संग भी दिलवाया। जब दूसरे दिन मुझे वापिस आना था तो उन्होंने कहा कि कप्तान साहब, आप सात दिन मेरे पास रहें। मैंने प्रार्थना की कि हजूर मैं तो गहस्थी हूँ। कोई सन्त–महात्मा नहीं

हूं। मुझे कहीं जाना है। आखिर हजूर महाराज ताराचन्द जी बहुत जोर से रोने लग गए और उन्होंने कहा कि लालचन्द तू तो निकल गया भाई। मैं फंस गया हूं। यह बात बहुत रहस्य की थी। वहां लगभग 50-60 मुनष्य बैठे थे परन्तु यह रहस्य किसी के समझ में नहीं आया। यह बात गुरूवाई वाली थी जो मुझे पण्डित फकीर चन्द जी महाराज ने लगभग 1958 में समझाई थी। मैं आपको विश्वास और प्रेम की बात बता रहा हूँ, परन्तु मन महाचंचल है, यह हर समय एक जैसा नहीं रहता। दूसरा जो बुद्धिमान् है, उनके लिए ध्यान का मार्ग है। ध्यान के मार्ग की बहुत सी विधि व तरीके गुरूमत में बताए हैं और तन्त्र में भी यही काम आते हैं जिसको मन मत कहते हैं। भारत में अध्यात्म ज्ञान की खोज करने के लिए दोनों ही विधियों का प्रयोग महापुरूषों ने किया है। मन्त्र या गुरूमत में तो अनेक पुस्तकें लिखी हुई हैं जैसे गीता, रामायण, महाभारत इत्यादि और इस मत में अनेक ऋषि, मुनि,अवतार व सन्त हुए हैं, जिनका ज्ञान शास्त्रों में दिया हुआ है। परन्तु तान्त्रिक महात्माओं ने इस ज्ञान को बहुत ही रहस्य में रखा है, जिससे यह आम मनुष्य के लाभ में नहीं रहा। तन्त्र कोई नई बात भारत के लिए नहीं हैं। परन्तु इस समय में आचार्य रजनीश ने तन्त्र के ज्ञान को बहुत खोला है जो आज तक बहुत ही गुप्त रखा जाता था तन्त्र का मतलब तन से है और इस तन में ही मन, आत्मा व सुरत है। तन्त्र के छोटे–२ सूत्रों का प्रयोग पंतजलि योग दर्शन में है। तान्त्रिक इन सूत्रों का प्रयोग पहले फूल–पौधों के साथ और फिर अपने ऊपर करता है और फिर इस तरह मन, आत्मा तक पहुंचता है। यह बहुत बड़ा जाल है। इसमें सिद्धियां बहुत मिलती हैं, यदि कोई इनके बीच में ही फंस जाता है तो वह आगे आत्मिक अनुभूति तक नहीं पहुंचता। इस तन्त्र के भी 'ध्यान और प्रेम' दो मार्ग इन तान्त्रिकों ने बताए हैं। परन्तु जो बहुत ही आसान विश्वास वाली बात है, उसकी चर्चा इस तन्त्र ज्ञान में नहीं बताई है, बस क्रियात्मक रूप में यह बात है। इसके

विपरीत गुरूमत में इस लोक का सब खेल ही वासना, इच्छा, चाह, संकल्प व विचार पर आधारित है जिस पर तान्त्रिकों ने कोई प्रकाश नहीं डाला है और यदि किसी ने बताया भी है तो इनका सब ज्ञान ही गुप्त है। सिवाय आचार्य रजीनश के किसी ने इसकी चर्चा नहीं की। वैसे यह विधि गलत नहीं है। हमारे जितने एलोपैथी डाक्टर व इंजिनियर हैं, वे सब तान्त्रिक हैं, क्योंकि ये सब पहले विधि का खुद प्रयोग करके देखते हैं और जब वह प्रयोग ठीक हो तभी उसे सही मानते हैं। जैसे डाक्टर पहले मेंढक पर सर्जरी का प्रयोग करता है फिर पशुओं पर और फिर मनुष्यों पर। इसी प्रकार जब वह दवा देता है तो पहले दो–तीन दिन की दवा का प्रभाव देखता है फिर आगे की दवा देता है। लेकिन यह तन्त्र ज्ञान अध्यात्म में गुप्त होने के कारण अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ।

अब रही बात अनुभव की जो धर्म का असली भाव है। यह पूजा, पाठ, जप, तप, दान, पुण्य, भक्ति, योग आदि जो धर्म–कर्म के लिए किए जाते हैं, सब मन को स्थिर या एकाग्र करने के तरीके हैं। यह बात पूर्ण अनुभवी महापुरूष पर है कि वह मनुष्य की प्रकति, संस्कार व अधिकार समझ कर उसको क्या विधि बताये। यह मुख्य बात है जो मेरे अनुभव में आई है। जब मन अन्दर ठहर जाए या एकाग्र हो जाए तो जो अनुभव हो, उसे गुरू को बताया जाए और फिर जो गुरू सलाह दें, उसके अनुसार अपना अनुभव बढ़ाया जाए। इस अनुभव की हालत भी बदलती रहती है। इसके विषय में और किसी प्रकार की रूकावट के विषय में भी गुरू को बताया जाए। अर्थात् यह विषय वक्त गुरू का है। और इस अनुभव की अन्तिम चोटी है परम आनन्द व परम शान्ति जो जीवन भर की बात होगी। आगे क्या होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता। यह मेरा अपना अनुभव है, दावा कुछ नहीं कि यही सही है। पिछले महापुरूषों ने अपने–२ अनुभव कई तरह से रहस्य में बताए हैं। परन्तु मेरी दष्टि में तो यह खुद अनुभव करके जानने का विषय है और वह

भी इसी ही जीवन में। शरीर त्यागने के बाद तो आज तक किसी ने आकर कुछ नहीं बताया है। और अगर शरीर छोड़ने के बाद कोई गुरू–पीर किसी को प्रकट होकर कुछ बताता है तो वह उस सज्जन का मन है। वह गया हुआ गुरू–पीर नहीं आता है। यदि किसी का मन पवित्र है तो उसके द्वारा कही जाने वाली बात सच हो सकती है, परन्तु यह भी आपका ही मन होगा। बाहर से कुछ नहीं आता है। इस विषय में मैंने बहुत से प्रमाण अपनी पुस्तकों में दिए हैं।

और जहां तक परलोक वाली बात है तो इस विषय में मेरा अनुभव यह है कि मैं साधन में एक शब्द को सुनता रहता हूँ, जिसे मैं 1956 से अब तक अनुभव करता आ रहा हूं। और मेरा यह साधन कबीर व अपने गुरू महाराज जी के अनुभव से मेल खाता है। अब यह शब्द जिसे मैं सुनता हूं, यह और है तथा इस शब्द को सुनने वाली वस्तु कुछ और है, जिसे सन्तों ने सुरत का नाम दिया है। इस साधन से जीवन में समता बनी रहती है। परन्तु कभी –२ कुछ समय के लिए बाहर के प्रभाव के कारण मैं नीचे मन में आ जाता हूं और विचारों में गिर जाता हूं। वैसे सहज साधन अपने आप बना रहता है। अतः 80-85% समता में रहता हूँ। शरीर व मन स्वस्थ हैं और भोजन उम्र के लिहाज से ठीक करता हूं। इस प्रकार इस लोक में अपना जीवन बहुत खुशी, प्रेम, आस–विश्वास व आनन्द लेते हुए जिया हूँ और अब भी जी रहा हूँ। यानी परलोक के रास्ते चल रहा हूँ। जैसे –

''जब पहुंचेगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाई।''

(कबीर)

परन्तु अनुमान यह है कि यदि उस समय मेरा यही अनुभव रहा तो यह मेरी सुरत रूपी बून्द शब्द रूपी परमात्मा में मिल जायेगी, पक्का कुछ कहा नहीं जा सकता। जैसे कहा है –

''खुदा की खुदाई, खुदा ही जाने।''

अतः यह बात स्पष्ट हो गई है कि धर्म केवल विश्वास

और अनुभव का विषय है। विश्वास में कुछ करना नहीं होता। जो इच्छा या कामना जीव की होती है वह सहज ही इष्ट के ध्यान व विश्वास से सफल हो जाती है। परन्तु बिना साधन अभ्यास के मन बदलता रहता है। अतः सन्तों ने पहले सुमिरन और गुरू के ध्यान से साधन बताया है और फिर इस साधन से शब्द और प्रकाश तक पहुंचना होता है। उसके बाद अन्तिम अवस्था के लिए कहा है –

''जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाए।
सुरत समानी शब्द में, ताको काल न खाए।।

(15)

कर्त्तव्य और धर्म के प्रति मेरा अपना अनुभव

अब जहां तक कर्त्तव्य और धर्म के प्रति मेरा अपना अनुभव है वह यह है कि मेरा जीवन बचपन से लेकर अब 80 साल की आयु तक बहुत ही हंसते–खेलते, उमंग, उत्साह, बेफिकरी, प्रेम, खुशी व आनन्द से गुजरा है। राजस्थान के पिछड़े इलाके चुरू में एक साधारण किसान के घर जन्म लेने पर भी जल्दी ही सेना में नौकरी का मिल जाना, शीघ्र ही अधिकारी पद का मिलना, छोटी आयु में ही गुरू का मिलना और बहुत सहज ही ज्ञान की प्राप्ति हो जाना आदि सभी कार्य मेरे अनायास ही होते चले गए। मैं इस योग्य नहीं था और न ही मैंने कुछ किया अपितु अपने आप यह सब होता चला गया। जैसे कहा है –

न कुछ किया न कर सका, न करने योग्य शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भए कबीर कबीर।।

इस प्रकार गुरू से ज्ञान मिलने के पश्चात् मैं इस सहज योग का अनुभव तब से करता चला आ रहा हूं। इससे एक तो मेरी दुनिया बहुत सुन्दर बन गई और मुझे जीवन में किसी बात का कोई अभाव नहीं रहा। अच्छा स्वास्थय रहा तथा धन का कोई अभाव नहीं रहा। हमेशा आशावादी जीवन बना रहा। पहले युद्ध में मैं बर्मा में इनटैलिजंस विभाग में था। उस समय मेरे साथ एक तीन भाषाओं का जानकार कैप्टन था जो भुटान के राजघराने का था, वह बर्मी, हिन्दुस्तानी व अंग्रेजी भाषा जानता था। वह बहुत ही धार्मिक विचारों का था। उसकी संगत से मैंने बहुत सी नेक बातें और ऊंचे विचार सीखे। और हिन्दुस्तान में अपने गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी की संगत से मेरे में जो कमियां थी, वह उनकी कपा से दूर होती चली गई और मेरा जीवन बहुत सुखात्मक बन गया। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन बहुत ईमानदारी से किया, जिससे मेरे बड़े अधिकारी मुझ पर बहुत विश्वास रखते थे और उनका मेरे प्रति बड़ा अच्छा भाव था। बराबर वालों से मेरा हमेशा प्यार व मित्रता का व्यवहार रहा तथा जो भी मेरे नीचे काम करते थे, वे सब मुझे बहुत चाहते थे क्योंकि मैं अपनी योग्यतानुसार उनकी पूरी सहायता करता था। इस प्रकार मेरा सेना का जीवन बहुत ही खुशी, प्रेम व उमंग का रहा। कभी किसी बात का डर या भय नहीं रहा और सभी छोटे–बड़ों से मेरा प्यार–प्रेम व आदर–सम्मान का व्यवहार रहा। घर–परिवार में भी गुरू महाराज जी की शिक्षा से विश्वास, प्रेम, खुशी व उमंग का माहौल बना रहा। यानी गुरू महाराज जी की शिक्षा से ही मैं घर या बाहर बहुत ही ईमानदारी व सच्चाई से अपने कर्त्तव्य के पालन करने में सफल रहा। जैसे एक बार मैं अपने गुरू महाराज जी की शरीर की सेवा कर रहा था तो उन्होंने मुझसे कहा कि क्या आपके माता–पिता जीवित हैं? मैंने कहा – माता जी तो नहीं, पिता जी हैं। तब उन्होंने

कहा कि जो तुम नए कपड़े पहना कर मेरे शरीर की सेवा करते हो, वह अपने पिता जी की कर दिया करो, मुझे मिल जायेगी। उस दिन से मुझे बात समझ में आ गई और मैंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने पिता की भोजन, वस्त्र व शरीर की सेवा की और मैं पित ऋण से मुक्त हो गया और आज उन्हीं के आशीर्वाद व गुरू कपा से जीवन में परम आनन्द व परम शान्ति का अनुभव करते हुए मुक्त अवस्था का जीवन जी रहा हूँ। अतः कर्त्तव्य पालन में यह बात विशेष ध्यान में रखने वाली है कि हम सब अपने माता–पिता, परिवार, जाति, समाज, गांव व देश के ऋणी हैं। अतः अपनी–२ योग्यतानुसार इनकी सेवा करके ऋण से मुक्त होते हुए हम ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो हमारा यह जीवन सुखमय बन सकता है। जैसे मैं हर क्षेत्र में अपने कर्त्तव्य का पालन करने से आज अपने आपको बड़ा हल्का महसूस कर रहा हूं। मुझे किसी बात का कोई अफसोस नहीं है कि मैंने अपने कर्त्तव्य में कहीं आनाकानी की हो। यदि अनजाने में कुछ कमी रही हो तो कुछ कह नहीं सकता।

''कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस कीन्हा तस फल चाखा।''

अब रही बात धर्म की, जो बहुत छोटी सी है। यह धर्म श्रद्धा और विश्वास का विषय है। यह किसी जीवित हाजिर, पूर्ण विवेकी, अनुभवी महापुरूष से योग सीखकर खुद के अनुभव से ही जाना जा सकता है। हमारे अन्दर जो यह तत्व बोलता है, उसको जान लेना ही मुख्य धर्म है और उसको जान लेने वाला ही वास्तविक धर्मात्मा कहलाता है। मैंने खुद ने अपने गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी की कपा से उनकी Radiation से इस धर्म का अनुभव किया था और अब भी वह नाम तथा शब्द अन्दर गूंजता रहता है। जैसे कहा है –

''आप आपको आप पहचानो, कहा और का नेक न मानो।''
गुरू ने दीना भेद अगम का, सुरत चली तज देश भ्रम का।

इस धर्म के योग साधन में चार अवस्थाएं बताई हैं –

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा च, मूर्तिपूजा धमाधमा।।

भाव यह है कि मनुष्य की प्रकति, अधिकार व संस्कार के अनुसार यह सब साधन हैं, परन्तु आखिर तो मंजिल एक है। मेरी एक विशेष शिष्या है डा० कमला जो बहुत अच्छी और ऊंचे दर्जे की साधवी है। वह ध्यान, धारणा में बैठते ही सीधी शब्द और प्रकाश के अनुभव में चली जाती है। मैं इसको अपने से ऊंचे दर्जे की साधवी मानता हूं, क्योंकि इसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है। और अपने अन्दर प्रकाश का अनुभव वही योगी कर सकता है जिसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम हो। तो योगी जो अपने अन्दर शब्द, प्रकाश, लोक लोकान्तर तथा इष्ट के रूप का जो भी अनुभव करता है, वह सब उसके संस्कारों के अनुसार ठीक है परन्तु समय–२ पर ये बदलते रहते हैं और यह सब मन की एकाग्रता के लिए है जो प्रकति के अनुसार और संस्कारों के अनुसार होते हैं। अतः सबका एक अनुभव नहीं होता है।

मेरा खुद का जो अब अनुभव है, वह केवल एक सार शब्द का है, जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है। किसी को लगन हो और कोई शुभ कर्म हो तो वह खुद अनुभव कर लो, क्योंकि यह बात लिखने, पढ़ने तथा बताने में नहीं आ सकती है। मैं 1962 से गुरू आज्ञा से सत्संग करा रहा हूं। सेना से जब दो माह की छुट्टी आता था तब बाहर के गांवों में गुरू ज्ञान का प्रचार करने के लिए सत्संग देने जाता था और साथ में इकतारा बजाने वाला मनुष्य मेरे साथ होता था। जब वह सन्तों के शब्द इकतारे पर गाता था तब लोग इकट्ठे हो जाते थे और तब मैं उन लोगों को गुरू महाराज जी के ज्ञान का सत्संग देता था। इस प्रकार शुरू से अब तक बड़ी खुशी व आनन्द व मस्ती का जीवन जीता आया हूं। रात को सोते ही

तीन–चार घण्टे गहरी नींद में चला जाता हूं। फिर जागते ही शब्द योग में चला जाता हूं, फिर गहरी नींद में घण्टा आध घण्टा चला जाता हूं फिर होश में आता हूं और शब्द में चला जाता हूं। कभी–२ बाहर के प्रभाव से किसी विचार में आता हूं परन्तु तुरन्त सम्भल जाता हूं। कभी चार–पांच महिनों में किसी स्वपन में चला जाता हूं परन्तु आजकल स्वपन कई महिनों से नहीं आ रहा है। मेरे स्वपन सेना सम्बन्धी होते हैं, जैसे – सेना की परेड, युद्ध–भूमि, हेलीकॉप्टर उतारने का विचार आदि। यह ऊपर वाली बात लिख कर जब मैं दिन का भोजन करके सो गया तो मैं गहरी नींद में चला गया और स्वपन में क्या देखता हूं कि डा० कमला मुझे कह रही है कि आप यहां मानव मन्दिर में सत्संग क्यों नहीं देते हो? तब मैंने स्टेज पर विराजमान शून्यो जी महाराज की तरफ देखकर कहा कि कमला, यदि मैं यहां सत्संग दूंगा तो लोग मुझे गुरू समझने लग जायेंगे और वे महाराज जी की बात नहीं सुनेंगे। इसी स्वपन के बीच में मेरा पोता आया और जोर से बोला कि – दादा जी, चाय रखी है, पी लो। मैं उठा, हाथ–मुंह धोकर चाय पी और जो बात लिखी थी कि आज तक स्वपन में मुझे कोई सत्संगी या सत्संग की बात नहीं आई, वह पंक्ति काट डाली और फिर थोड़ा ध्यान में जाकर लिखना शुरू कर दिया।

अब आप यह कारण जाने कि यह स्वपन आज मुझे क्यों आया? जबकि आज तक कोई सत्संग की बात या सत्संगी भाई मुझे स्वपन में नहीं आए थे। पूज्य मानव दयाल जी (डॉ० आई. सी. शर्मा) जी के समय में वह नाम–दान मेरे से दिलवाना चाहते थे। परन्तु मैंने खुद ने ऐसी गुस्ताखी नहीं की, अपितु उनके कहने पर नाम–दान के लिए बैशाखी, गुरू–पूर्णिमा, दशहरा के सत्संगों में सत्संगियों को तैयार कर देता था। आसन में बैठने का तथा ध्यान का तरीका बता देता था और फिर पूज्य मानव दयाल जी को बुलाकर उनसे नाम की रसम करवा कर उन्हें दान–दक्षिणा दिला देता था। और उनकी अनुपस्थिति में सैशन

जज के.पी.वर्मा या प्यारे जनरैल नेगी साहब से यह नाम देने का काम करा देता था।

अब जब प्यारे जनरैल साहब (वी.एन. नेगी) जी महाराज गुरू गद्दी पर विराजमान हुए तो मैंने किसी खास विचार से उनको यह बात बताई कि हजूर मानव दयाल जी मुझे नाम–दान में साथ रखते थे और मेरे से सत्संगियों को नाम–दान के लिए तैयार करवाते थे जिससे अधिक सत्संगी मुझे गुरू मानते हैं और इनमें मेरा स्वरूप प्रकट होता है, अतः आप यह काम मेरे से करवाओगे तो यह लोग मुझे ही गुरू मानने लग जायेंगे। मैंने यह बात जिस ख्याल या विचार से कही, वह तो ठीक हो गई, क्योंकि जनरैल साहब ने उस दिन से मेरे को नाम–दान देने के लिए नहीं बुलाया, परन्तु वह मेरे भाव या विचार या नीयत मेरे कर्म बन गए जिन्हें आज स्वपन में मुझे भोगना पड़ा है। यह बात बहुत सूक्ष्म है। इसको कर्मगति कहते हैं। अब आप सोचो कि गुरूओं को तो पता नहीं क्या–२ खेल खेलने पड़ते हैं? मैं पूज्य पं० फकीर चन्द जी महाराज का अति धन्यवाद करता हूं कि मुझे एक छोटा सा सत्संग देकर उन्होंने गुरूवाई के महाजाल से बचा दिया और बहुत ही सरल मार्ग मेरे कल्याण का बता दिया। मैं अपना अधिक जीवन मुक्त अवस्था में जिया हूं। जिस मुक्ति की बहुत चर्चा होती है, मैं इसका आनन्द व अनुभव अपने इस लोक के जीवन में जीते हुए करता आ रहा हूं, कल क्या गुजरे? कोई दावा नहीं है। मैं सत्संग कराता हूं जिसमें राध ाास्वामी पंथ के तथा दूसरे सम्प्रदायों के शिष्य भी मेरा सत्संग सुनते हैं। जिनको मेरे प्रति विश्वास हो जाता है, तब उनका मन जब भयवश या प्रेमवश एकाग्र होता है तो मेरा रूप प्रकट होकर उनकी सहायता करता है, जबकि मैं कहीं नहीं जाता हूं और न किसी की सहायता करता हूं। पहले तो यह घटना कभी–२ किसी के साथ घटती थी, परन्तु अब लगभग 20 साल से यह घटना अधिक सज्जनों के साथ घट रही है। रोज नई–२ बातें सुनता हूँ और मैं साफ बता देता हूं कि उन प्रेमियों का मन

ही मेरा रूप बनाकर उनकी सहायता करता है। यह सब संस्कार का फल है। मेरे में कोई सिद्धि शक्ति नहीं है। यह शक्ति तो विश्वास रखने वालों में है। परन्तु मेरी सच्चाई का वह विश्वास नहीं करते, क्योंकि उनको संस्कार ही ऐसे मिले हुए हैं, कि गुरू में ही यह शक्ति है। प्यारे सज्जनों, बाहर से न कोई इष्ट आता है, न कोई पीर–पैगम्बर आता है। उस भक्त के विश्वास से ही इष्ट, पीर, पैगम्बर, देवता, फरिश्ता आदि का रूप प्रकट होता है। यह सब विश्वास और संस्कार काम करता है। यह मेरा ही अनुभव नहीं है। मेरे गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी का पूरा साहित्य इन प्रमाणों से भरा हुआ है कि इन्सान के मन में और उसके विश्वास में ही यह शक्ति है। पिछले महापुरूषों ने इस बात को रहस्य में कहा है। उस समय इस बात को साफ कहने का नियम नहीं था। परन्तु आज बुद्धि, विज्ञान का युग है। आज का बुद्धिमान मनुष्य इस रहस्य को जानना चाहता है। आज के गुरू और महापुरूषों ने भी लोगों की भीड़ अपने पीछे लगा रखी है कि गुरू में बहुत ऋद्धि–सिद्धि है। वे इस रहस्य को खोलते नहीं। साफ बात कहने पर एक तो उनको मान–सम्मान नहीं मिलता और उनको फिर धन भी कौन देगा? जैसे कहा है –

''सच्ची बात शर्दूला कहे, सबके मन से उतरा रहे।''

''कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी येह।।''

यह मान–बड़ाई सन्त सज्जनों का रोग है। वास्तव में सन्त वह है जो समस्थिति में रहता है। उसके शरीर की कोई वेश–भूषा नहीं होती है जैसे –

''का माला मुद्रा के पहने, चन्दन घिसे लिलारा।
मुंड मुंडाए सिर जटा रखाए, अंग लगाए छारा।।

''क्या पूजा पाहन की कीजे, जो नहीं तत्त्व विचारा।
सार शब्द सतगुरू का चिन्हे बिन, होए न निस्तार तुम्हारा।।''

चर्चा कर्त्तव्य और धर्म से शुरू की थी तो जो मेरे अनुभव व समझ में आया, उसे मैंने अपने टूटे–फूटे शब्दों में लिख दिया है।

धर्म के विषय में मेरे दो बड़े अनुभव हैं जिनको आज तक पं० फकीरचन्द जी महाराज के सिवाय किसी भी महापुरूष ने साफ नहीं बताया है। रहस्य में तो बहुत महापुरूषों ने चर्चा की है। मेरे अनुभव में भी यह बात आई है कि जो कुछ चमत्कार किसी के साथ घटित होते हैं, वे उसके मन की शक्ति और विश्वास का फल हैं। इस बात का प्रमाण मैं अब हाजिर मनुष्य शरीर में जीवित हूं और जिनके साथ चमत्कार घटित हुए हैं, वे सज्जन भी मेरे साथ शरीर रूप में जीवित हैं। इससे बड़ा और क्या परिणाम हो सकता है? अब राम, कष्ण, देवी, देवता, बाला जी, माता जी, मोहम्मद साहब, ईसामसीह तो हाजिर हैं नहीं जो हमको यह बताए कि हम किसी के अन्दर प्रकट नहीं होते हैं। इस रहस्य को मैंने अपनी पुस्तकों में हर जगह साफ खोला है, सैन–बैन में तो पहले भी कहा गया है। जैसे –

''जिसकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्त्त देखी तिन तैसी।''

दूसरा, मेरा बड़ा अनुभव यह है कि यदि कोई साधक साधन के समय सब विचारों को छोड़ दे तो उसको सूक्ष्म लोक से सीधा आगे कारण लोक का अनुभव हो जायेगा, जो केवल शब्द और प्रकाश है। और कई सज्जन तो प्रकाश के मण्डल को भी पार कर सीधा सार शब्द में ठहर जाते हैं। यह मेरा अपना अनुभव है। परमात्मा की लीला को मनुष्य चाहे वह सन्त हो या परम सन्त हो, कोई जान नहीं सकता है जैसे –

''तुम्हारी गत मत तुम ही जानी।
नानक दास सदा कुर्बानी।।''

''खुदा की खुदाई, खुदा ही जाने।''

''करे करावे आप ही आप, मानुष के नहीं कुछ भी हाथ''।

''होहि वही जो राम रचि राखा।
को कर तर्क बढ़ावत शाखा।।''

तो रहस्य यह है कि ''कर्म गति टारी नहीं टरे'' परन्तु हमने इस बात पर अधिक जोर नहीं देना है, क्योंकि यह लोक संकल्पमय है और कारण लोक बिना संकल्प का है। इस लोक में जैसा संकल्प हम करेंगे, वैसा ही फल हमको मिलेगा। इसलिए यह लोक आस–विश्वास का है और कारण लोक के मुसाफिर को केवल प्रभु इच्छा पर रहना है। जैसे –

''जो हो सो ही भला।''

''गुरू की मौज रहो तुम पार।
गुरू की रजा सम्भालो यार।।''

तो लोक और परलोक दोनों की सफलता के साधन अलग–२ हैं। लोक है विचारों का और परलोक है जहां सब संकल्प, यत्न समाप्त हो जाते हैं, वहां केवल शान्ति व मौन है।

''ऊँ शान्ति शान्ति शान्ति।''

(16)

लोक-परलोक का सफर (धर्म)

प्यारे सज्जनों। मेरे अनुभव के अनुसार इन महापुरूषों ने जितने लोक–लोकान्तरों का अनुभव किया है, उनमें यह लोक

परमात्मा ने मनुष्य के लिए जीवन का खेल खेलने के लिए सबसे सुन्दर और पूर्ण बनाया है।

ऊं पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

यहां किसी चीज का अभाव नहीं है। वास्तव में मनुष्य के अन्दर सुरत जो परमात्मा के तत्त्व अंश के रूप में है, वह यहां आकर खेल खेलती है। यह सुरत शरीर, मन और आत्मा का खेल करती हुई परम आनन्द और परम शान्ति के भण्डार से आती है और सब खेल खेलकर वापिस अपने निज मुकाम पर पहुंच जाती है। कहने का भाव यह है कि इस लोक में शरीर, मन, आत्मा और सुरत चारों मिल कर खेल खेलते हैं। जैसे जब भक्त नाचता है तो उसके शरीर के सब अंग थरथराते हैं और शरीर बहुत आनन्द का अनुभव करता है। इसी प्रकार जब वह गाता है तब गाने में, रोता है तब रोने में और खाता है तब खाने में जो भी शरीर, इन्द्रियों से आनन्द लेता है, वह सब आनन्द सुरत से इन्द्रिय, मन, शरीर तक इस आत्मा का है। यहां मनुष्य जो भी इच्छा लेकर आता है और यहां आकर जो इच्छा, चाह करता है उसकी सफलता उसको मिलती है। और इस लोक में ही जब मनुष्य खेल खेलकर थक जाता है और अपने निज घर वापिस जाना चाहता है तो वापिस जहां से आया है, वहां परमात्मा तत्त्व में जाकर मिल सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई ऐसा लोक नहीं है, जहां से मनुष्य वापिस अपने निज देश को जा सके।

वास्तव में यह लोक संकल्पमय है। जैसा जिस का संकल्प या विचार है, वैसा ही उसका जीवन है। मनुष्य को इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि वह कैसे विचार, इच्छा या संकल्प रखे। यह विधि कोई वक्त गुरू जो इस समय में हाजिर हैं, वह बताता है कि भाई, तू जो चाहता है, वही विचार अपने मन में रखा कर और सुन्दर–२ सोचा कर, यानी शिवसंकल्प रखा कर। यदि पहले कोई चीज तेरे भाग्य में नहीं है तो अब इच्छा रखो,

नया भाग्य बन जायेगा। इस प्रकार किसी जीवित गुरू से सम्बन्ध रखने से, उसका सत्संग सुनने से मनुष्य को संकल्प शक्ति का ज्ञान हो जाता है। सब खेल यहां संकल्प का है। परन्तु मनुष्य कभी अच्छे तो कभी बुरे विचार करता है। इसलिए उनका फल कभी लाभ तो कभी हानि में होता है। यह सुख–दुख मनुष्य के खुद के ही विचारों का फल है। यदि मनुष्य को किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष से यह ज्ञान हो जाए तो उसका जीवन जैसा वह चाहता है वैसा ही सुखात्मक बन सकता है। मैंने 1956 में अपने गुरू महाराज जी से यह रहस्य समझा और उस दिन से मेरा यह जीवन–लीला का खेल सुख में बदल गया। सुख नाम स्वर्ग का है और दुख नाम नरक का है। आपके विचारों में, संस्कारों में यदि दुख भरा हुआ है तो आपको पूरी दुनिया ही दुख से भरी हुई मालूम होगी। यदि आपके संकल्प, विचार भाव में सुख, आनन्द, प्रेम, विश्वास भरा हुआ है तो यह दुनिया आपको सुख, आनन्द व प्रेम से भरपूर मालूम होगी। जैसे कहा है –

''जैसी दष्टि, वैसी सष्टि''।

अर्थात् यदि आपने पीले चश्में लगा रखे हैं तो आपको सब कुछ पीला ही नजर आयेगा और यदि लाल चश्में लगा रखें हैं तो सब कुछ लाल ही नजर आयेगा। तो बात मनुष्य के अपने ही विचार, भाव, संकल्प व संस्कार की है।

यह दुनिया बहुत प्यारी है। यहां बहुत ही भले लोग हैं। धर्मात्मा सज्जन हैं, दानी हैं, दयालु हैं तथा चोर, डाकू, ठग भी हैं । यह भगवान का एक सुन्दर बाग है। फूल, पत्ते, फल, कांटे सब यहां पर मौजूद हैं। यहां सब तरह के सज्जन हैं। जो कोई चोरी का विचार भाव रखते हैं, उनको चारों तरफ चोर ही चोर नजर आते हैं। झूठे को सब झूठे और ठग को सब ठग ही नजर आते हैं। वास्तव में सब लोग एक जैसे नहीं होते हैं। देखने वाले को उसके विचारों के अनुसार भासते हैं।

तो मेरा कहने का भाव यह है कि परमात्मा ने जो यह

दुर्लभ मनुष्य जीवन दिया है, इसे गुरू कपा से मन, वचन और कर्म को शुद्ध रखकर सुन्दर बनाओ बहुत आसान सी बात है कि किसी जीवित महापुरूष के दो–चार सत्संग सुनकर जब विश्वास बन जाए तब उनसे ध्यान की विधि या ढंग सीख लो, सत्संग सुनो और साधन–अभ्यास करके बात समझो। अपने संकल्प को 'शिव' यानी सुन्दर बनाओ। प्रेम–प्यार का जीवन यहां जिओ। यह आपका जीवन ही पर्व है। अतः यहां जीवन का पूरा रस व आनन्द लो। गुरू का सहारा लो, पहले बाहर का और फिर भीतर ध्यान–योग का और फिर सब खेल ही सहज बन जायेगा। गुरू की संगत में अपने आपको पहचानों तथा अपने आपको और अपने घर–परिवार को स्वर्ग बनाओ मैंने तो गुरू कपा से यही अनुभव किया है कि यह लोक और यह मनुष्य जीवन ही स्वर्ग है। अतः आप होश में आओ और खुद किसी महापुरूष की संगत में जाकर यह अनुभव करो। हम सब यहां मुसाफिर हैं जैसे कहा है –

''मुसाफिर की मुसाफिर से सफर में दोस्ती कैसी?''

तो यहां सब खेल खेलें और फंसे नहीं।

इस लोक में मनुष्य धर्म–कर्म के विचार से जितना भी शुभ कर्म करता है या महात्मा का वेष बनाता है या कोई दान, पुण्य, सेवा, व्रत, नियम, आचार आदि का पालन करता है या गुरू व ज्ञानी बनकर यह जीवन का खेल खेलता है, इन सबकी कोशिश अन्त में परम शान्ति की है। परन्तु यह तो मन, वचन, कर्म से वह शुद्ध व पवित्र बनेंगे तभी बात बनेगी। महात्मा का वेष बनाने व सच्चाई को न जानने से अन्त में कुछ हाथ नहीं आता है । जैसे कहा है –

कोटि-२ मुनि यत्न कराहि।
फिर भी अन्त राम नहीं आहि।।

अब बहुत से महापुरूष मेरे इन विचारों से शायद सहमत नहीं हो कि यह लोक सुखों का घर है, क्योंकि अधिकतर इन महापुरूषों ने इस लोक के जीवन को दुख व कष्ट का ही

बताया है। हो सकता है उन्होंने अपना जीवन दुख में जिया हो या दूसरे जीवों को दुख में जीते हुए अनुभव किया हो। जैसे महात्मा बुद्ध राज घराने में पैदा होकर भी दूसरे दुखी लोगों को देखकर दुखी होकर राजमहल छोड़कर चले गए थे। और जैसा गुरू नानक देव जी ने कहा है –

''नानक दुखिया सब संसार, सुखिया सो जो नाम आधार।''

अब यह बात उनके संस्कार, प्रकति और कर्मगति की रही होगी। ऐसे विचार वाले महापुरूष जिनको शुरू से ही वैराग होता है, वे यहां किसी विशेष कर्म को भोगने के लिए पैदा होते हैं और उन्हें यहां दुनिया की किसी भी वस्तु में रस नहीं आता है। परन्तु ऐसे महापुरूषों की संख्या बहुत कम होती है । जैसे–

''कहे नानक कोटिन में कोई एक, जे नारायण चित्त।''

ऐसे महापुरूष त्यागी होते हैं। उनको संसार के भोगों में कोई रूचि नहीं होती। अब उन विशेष महात्माओं की नकल कर जगह–२ आज के इन महापुरूषों ने घर–बार, बाल–बच्चे छोड़कर त्याग का सांग बना रखा है। यह कहने को तो त्यागी हैं परन्तु तरह–२ के सांसारिक भोगों की तरफ इनका मन आकर्षित रहता है। अच्छा खाना–पीना, रहना और यात्रा करने का यह शौक रखते हैं और कहने को त्यागी हैं। यह बात मैं कोई गर्व से नहीं कह रहा हूं, अपितु मुझे गुरू कपा से इस अध यात्म ज्ञान व तत्त्व ज्ञान का अनुभव है। और मैं भोग में योग की विधि अच्छी तरह से जानता हूं और ऐसी रहनी रहता हूं अर्थात् सब मनुष्य जीवन की लीला करते हुए उस तत्त्व ज्ञान का सहज ही चलते–फिरते, खाते–पीते, सत्संग देते हुए, जीवन की हर गति में अनुभव करता रहता हूं। तो जिन महापुरूषों ने इस संसार में जीवन के दुख वाली बात कहीं थी या जो अब कह रहे हैं, वह लाखों में कोई एक होता है जिसको यह भासता है कि यह दुनिया दुःखों का घर है। यह वास्तव में है नहीं, परन्तु उसको ऐसा भासता है। यह एक दिमाग की हालत है जो वैराग की हालत में भासता है। इसी प्रकार जो प्यारे वेदान्ती

भाई भी ऐसी बातें करते हैं कि यह दुनिया है ही नहीं, यह भी मनुष्य के मन की एक स्थिति है जहां कुछ समय उसको यह भ्रम रहता है कि यह दुनिया नहीं है। परन्तु जब हालत बदलती है तब इस हालत से गिर कर उसे होश आ जाता है कि दुनिया तो है, परन्तु मुझे ही नहीं भासती थी। अतः जो इन महापुरूषों का कहना है कि यह दुनिया और मनुष्य जीवन दुखों का घर है, अतः नाम लो और परलोक में चलो, यह मेरे अनुभव में नहीं आया है क्योंकि मैंने इस दुनिया में स्वर्ग जैसा जीवन जिया है। दूसरा परलोक के सुख को आज तक किसी महापुरूष ने वापिस आकर नहीं बताया है।

तो क्या परलोक नहीं है? नहीं ऐसी बात नहीं है। परलोक है और वह यह स्थान है जहां योगी अपने साधन–अभ्यास में ऐसे स्थान पर पहुंच जाए, जहां कोई हलचल नहीं है और जहां पूर्ण शान्ति की अवस्था है। यह अवस्था किसी अनुभवी सतगुरू से योग सीखकर ही आ सकती है। यह परलोक का साधन त्याग, तप व वैराग का है। इसका अनुभव वही कर सकता है जिसके मन में साधन के समय कोई संकल्प, विचार, इच्छा या वासना न हो। परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखें कि अगर आप किसी प्रकार के विचार, संकल्प या इच्छा नहीं रखेंगे तो आपकी यह दुनिया नहीं बनेगी। यदि दुनिया बनी हुई है और कोई इच्छा इस दुनिया में बाकी नहीं हैं तो ठीक है। यदि दुनिया में आपको किसी चीज का अभाव है और आपकी इच्छाएं शेष हैं तो आपका परलोक नहीं बनेगा। मेरी दुनिया बनी हुई थी और मुझे केवल इस भजन या नाम को जानने की लगन थी इसीलिए मुझे पहले ही दिन गुरू के सम्पर्क में आते ही इसका अनुभव हो गया।

यह परलोक की यात्रा मन, आत्मा व सुरत से शुरू होती है। जैसे जब साधक ध्यान करता है तो उसके साधन में विचारों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इसे सहस्राकार का स्थान कहा गया है। यहां से सूक्ष्म लोक का सफर शुरू हो जाता है। अब

ध्यान की अवस्था में योगी अपने संस्कार और प्रकति के अनुसार ऊपर के सूक्ष्म लोकों का अनुभव करता है। जैसे राम लोक, विष्णु लोक, शिव लोक, सूर्य लोक आदि। यह सब योगी के अपने संस्कार होते हैं या उसकी देखी, सुनी, पढ़ी हुई बातें होती हैं या उसके अपने माता–पिता, नाना–नानी या पीढ़ियों के संस्कार होते हैं जो उसके साधन में प्रकट होते हैं और वह यहां तरह–२ के नजारे, दश्य अपने अन्दर अनुभव करता है जो वास्तव में सत्य नहीं, केवल योगी को भासते हैं और वह इनमें ही सफर करता रहता है, जो बहुत ऊंची बात है। शास्त्रों में ये लोक–लोकान्तर बताए हैं –

ऊं भू भवः स्वः जनः तपः महः सत्यः।
तलः अतलः वितलः तलातलः महातलः रसातलः पातालः।।

शायद किसी ऋषि ने इनका अनुभव किया हो। परन्तु यह सूक्ष्म लोक विचारों का है और जो भी योगी सज्जन यहां साधन में रंग, रूप, शक्ल व नजारे देखते हैं व आनन्द लेते हैं, वह मन, आत्मा की मिलौनी के हैं। इसमें मन शामिल है अतः यह माया है जो है नहीं, भासती है। जैसे कहा है –

''गो गोचर जहां लग मन जाहि।
सो माया कत जानो भाई।।'' (तुलसी)

इस प्रकार जो साधक आत्म पद तक पहुंच जाता है, वह परम आनन्द की स्थिति का अनुभव करता है। क्योंकि आत्मा प्रकाश रूपी है। जैसे कहा है –

'आनन्द स्वरूप तू देव निरंजन, धर के ध्यान हमारा।''

यहां साधक की ध्यान योग में जितनी गहराई होगी, वैसा ही अनुभव वह करेगा। यहां योगी सफेद रंग के प्रकाश का आनन्द लेता है परन्तु ध्यान रहे इस आनन्द का अनुभव वही योगी या साधक करेगा, जिसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य ठीक होगा। यह वीर्य जो मनुष्य में जीवन शक्ति है, यह उसी का आनन्द है। जो सज्जन Sex या काम भोग के आनन्द में उलझे

हैं, वे इस आत्म पद का आनन्द नहीं ले सकते हैं।

अब जो साधक निज घर जाने की चाह या इच्छा रखते हैं और परम आनन्द व परम शान्ति को पाना चाहते हैं तो उन्हें इन सूक्ष्म लोक के नजारों को छोड़कर आगे जाना होगा। आगे कारण लोक में सार शब्द का अनुभव है, जो मंजिल तक एक ही है। यहां मनुष्य की सुरत जो परमात्मा का अंश है, (सफर) साधन करती हुई उस शब्द रूपी परमात्मा में लीन हो जाती है यानी बून्द रूपी सुरत उस समुद्र रूपी सागर में मिल जाती हे। वहां सब प्रकार की हलचल समाप्त हो जाती है। और कुछ कहने सुनने और करने धरने की बात ही नहीं रह जाती है। जैसे कहा है –

कहां कहें अनकही भली है।
वहां तो वेदशास्त्र कछु नाहि।
वहां अकथ यहां कथा चली है।
कहें कबीर सुनो भाई साधो।
सोहम् हंसा सर्वमयी है।।

राम रहीम करीम न केशो, कुछ नहीं कुछ नहीं था सो था।
जो कुछ था सो अब के भाखूं, उनमुन सुन्न विसमाधि राखूं।।

अर्थात् इस कारण लोक में मौन या चुप्पी है। मेरा साधन इस कारण लोक का है। यह सूक्ष्म लोक के साधन मेरे अनुभव में नहीं आए जो राधास्वामी वाणी में सहस्राकार से सचखण्ड तक बताए गए हैं और जिन्हें योगी भिन्न–२ प्रकार से अनुभव करता है। जैसे मन के विचार, आकति, लोक–लोकान्तर आदि।

(17)

खुश रहने के कुछ सुनहरी सिद्धान्त

1. चूंकि मनुष्य बुद्धि और हृदय के समस्त श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न है और श्रेष्ठ इच्छाओं व प्रवत्तियों से परिपूर्ण है इसलिए वह सुखी जीवन बिताने के लिए बनाया गया है न कि दुखी जीवन के लिए।
2. खुश रहने में कुछ व्यय नहीं करना पड़ता जबकि दुःखी रहने में बहुत शारीरिक व मानसिक शक्ति व्यय होती है।
3. खुश व्यक्ति जीवन में लाभ उठाता है परन्तु दुःखी व्यक्ति अपना बहुत कुछ गंवाता है। जिस व्यक्ति ने अपनी खुशी या प्रसन्नता को खो दिया, उसने मानों अपना सब कुछ खो दिया।
4. प्रसन्न व्यक्ति सदैव स्वस्थ, धनवान तथा बुद्धिमान होता है और दुःखी व्यक्ति ठीक उसका उल्टा निर्बल, निर्धन व मूढ होता है।
5. पल भर का सुखी जीवन सहस्रों वर्षों के दुखी जीवन से बढ़कर है।
6. जो व्यक्ति प्रसन्नचित है, वह हमेशा ईश्वर के साथ रहता है और दुखी मनुष्य शैतान का साथी है।
7. आनन्द ही ईश्वर है। जो मनुष्य ईश्वर को दूसरा नाम देता है, वह अज्ञानी है, क्योंकि ईश्वर स्वयं आनन्द स्वरूप है।
8. आनन्द सत्य है, दुख असत्य है। सुखी मनुष्य में सुखी जीवन की फुरना होती है और दुखी मनुष्य खोखला जीवन बिताता है।
9. ईश्वर का स्मरण करना प्रसन्न होना है और प्रसन्न रहना ईश्वर का स्मरण है। प्रसन्न व्यक्ति सदा ईश्वर के

निकट है।

10. मत्यु का दूसरा नाम दुख है और मैं तो यह कहूंगा कि दुख मत्यु से भी अधिक बुरा है। दुख के भयंकर जबड़े से मत्यु का पाश अधिक दयापूर्ण है।
11. धन संचय करने में अथवा धन सम्पत्ति के अभिमान में सुख नहीं है। सुख मुनष्य के मन में केन्द्रित है।
12. मदिरा–पान का नशा तुम्हें कभी सुखी नहीं बना सकता। यदि नशा करना है तो प्रभु–नाम का करें।
13. यदि तुम सुखी हो और उसका तुम्हें आभास है तो तुम अत्यन्त भाग्यशाली व्यक्ति हो।
14. वह ईश्वर को जानता है, ऐसा कहने, वाला और विश्वास करने वाला वस्तुतः दुखी व्यक्ति है। परन्तु जो अपने ज्ञान का अभिमान करता है, वह सबसे बड़ा मूर्ख व्यक्ति है। बुद्धिमान् वह है जो अपने को अज्ञानी समझता है।
15. सबसे सुखी जीवन पथ्वी पर व्यतीत करना है न कि स्वर्ग में। वास्तव में जो सुखी जीवन जीता है, वह पथ्वी पर ही स्वर्ग प्राप्त करता है।
16. आनन्द अपने ह्रदय के अन्दर खोजो, बाहर नहीं, क्योंकि वह आपके अन्दर है।
17. यदि तुम दुर्बलता पर विजय प्राप्त करना और स्वास्थ्य का लाभ पाना चाहते हो तो स्वास्थ्य–सम्बन्धी व्यायामों का अभ्यास करो और दुर्बलता को पराजित कर स्वस्थ हो जाओ। यदि तुम वात रोगों से छुटकारा चाहते हो तो अपने श्वास–उच्छवास का नियमन करो। और यदि तुम अपनी मानसिक शक्ति पर नियन्त्रण करना चाहते हो तो अपने मन को मानसिक केन्द्र पर एकाग्र करो। इसी प्रकार बुद्धिमान् बनने के लिए बुद्धि का अभ्यास करो और आनन्द प्राप्त करने के लिए अपने मन को आनन्द के केन्द्र पर एकाग्र करो, इससे तुम अपने आप को सबसे अधिक सुखी बना सकोगे।

18. जो व्यक्ति मदिरा, धन तथा स्त्री में सुख पाने का प्रयत्न करता है, वह एक पागलपने का खेल करता है। वह कभी सुखी नहीं हो सकता और सुख का अनुभव नहीं कर सकता।
19. यह आश्चर्य की बात है कि आनन्द सदैव आपके पास है और आप उससे रहित हो । जैसे –

घट में है सूझत नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक इस संसार को, हुआ मोतियाबिन्द।।

20. यदि तुम प्रसन्न रहना चाहते हो तो दूसरों के प्रति दयालु व शुभचिन्तक बनो, दीन–दुखियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करो, भूखे को रोटी व प्यासे को पानी दो। तब बदले में तुम्हें आनन्द ही आनन्द मिलेगा।
21. जो तुम्हें कष्ट पहुंचाए, उन्हें क्षमा करो। अपने पड़ौसियों की भावनाओं का सम्मान करो और अपने शत्रुओं के दोषों और दुखदायी व्यवहार के प्रति उदासीन रहो, इससे तुम सुखी रहोगे।
22. कहा जाता है कि सुख तथा शुभ गुण एक दूसरे पर निर्भर हैं परन्तु सच तो यह है कि जहां आनन्द है, वहां उसके साथ सदा शुभ गुण रहते हैं। एक प्रसन्न व्यक्ति सदा शुभ गुणी है। शुभ गुण आनन्द का दूसरा नाम है।
23. पवित्र मन ही आनन्द का अधिकारी है। जो व्यक्ति सन्तोष तथा संचय का जीवन बिताता है, वह चिन्ता, व्याकुलता और बाधा से मुक्त होता है।
24. सुखी व्यक्ति न तो शासक होता है, न दास। वह स्वभाव से सरल और श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण होता है। यदि कोई महापुरूष अपनी महानता से अनभिज्ञ है और वह यह नहीं जानता कि वह ऊंचा पुरूष है तो वह बड़प्पन, छोटापन, महानता और क्षुद्रता की अदलती बदलती अवस्थाओं से व्याकुल नहीं होता।

ऊपर जो सिद्वान्त बताए गए हैं, मैं इनको एक आनन्द योग, सुरत–शब्द योग, नाद–योग के योगी तथा साधक के गुण समझाता हूँ। परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज राधास्वामी पंथ में सुरत–शब्द योग के अभ्यासी थे और सुरत–शब्द योग के योगी में यह सब गुण एडी से चोटी तक अपने आप सहज में ही पैदा हो जाते हैं, क्योंकि शब्द की ही यह सब रचना और खेल है और मनुष्य की सुरत शब्द रूपी समुद्र की बून्द है। मेरे पूरे जीवन का यह अनुभव है। आगे का कोई दावा नहीं, सब मौज का खेल है।

यह प्रसन्नता आपको तब मिलेगी जब आप ध्यान–योग जो सुरत–शब्द का अनुभव है, स्वयं करके अपना अनुभव कर लोगे, क्योंकि यह अनुभव का विषय है और यही सब कुछ है। (Self realization is all and everything)

भाग - 2

(18)

योग

योग के विषय में पहले हम चर्चा कर चुके हैं। जैसे योग की प्राचीन विधियों के विषय में कहा गया है और आधुनिक विधि की चर्चा भी हुई है परन्तु यह विषय महत्त्वपूर्ण है, अतः मैं इस विषय में कुछ अधिक कहना चाहूंगा। जैसे हमने बताया है –

1. हठ योग - शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यह हठ योग किया जाता है जैसे आजकल का योग। मन के संकल्प से सिद्धि के लिए एक टांग पर खड़े होना, बर्फ में खड़े होना, धूप, वर्षा आदि को सहन करना आदि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं व स्वास्थ्य प्राप्त होता है परन्तु अध्यात्म में इसका कोई लाभ नहीं है।

2. प्राण योग - शरीर नींव है तथा प्राण ऊपर का भवन है। इस प्राण योग की इस समय में अध्यात्म ज्ञान में कोई आवश्यकता नहीं है। यानी अध्यात्म व आत्म ज्ञान के लिए प्राणों की किसी भी तरह छेड़छाड़ की आवश्यकता नहीं है। राधास्वामी योग में भी इस बात की चर्चा है और मेरा खुद का भी यही अनुभव है कि प्राण योग अध्यात्म के लिए इस समय बिल्कुल न किया जाए।

3. मानसिक योग - यह मन को शक्तिशाली बनाने के लिये किया जाता है, जिसमें भक्ति योग, कर्मयोग, प्रेम योग से मन को मजबूत किया जाता है जिससे बाहर की सब चुनौतियों का इस पर प्रभाव न पड़े।

4. विज्ञान या ज्ञान योग - यह बुद्धि को विकसित व तीक्ष्ण बनाने का तरीका है, जिससे यह जीवन की गहनतम समस्याओं को पकड़ सके और अन्तर्ज्ञान (Intution) प्राप्त कर सके। इसके लिए बहुत एकाग्रचित्त और विद्वान होने की आवश्यकता है। इसके दूसरे नाम भी हैं जैसे ध्यान योग, नाम योग आदि। अब आप चारों योगों के विषय में साधारण तौर पर समझ गए होंगे।

5. आनन्द योग - यह योग की वह पद्धति है जिसे सतपुरूष राधास्वामी दयाल ने बहुत स्पष्ट करके बताया है। इसके दूसरे नाम भी हैं जैसे सहज–योग, शब्द–योग, सुरत–शब्द योग, उदगीत योग, प्रणव–योग आदि। ये सब एक ही उद्देश्य को प्रकट करते हैं। आनन्द योग जैसा कि इसका नाम है, यह अपने साधकों में शब्द अथवा नाद के साधन द्वारा आनन्द प्राप्त करने का योग है। यह सबसे अधिक सुगम, सर्वोपरि, पवित्र और हानिकारक न होकर सुखदायक है। प्रत्येक मनुष्य बूढ़ा, स्त्री व जवान इसे कर सकता है और किसी भी समय, किसी भी स्थान पर तथा किसी भी परिस्थिति में इसे प्राप्त कर सकता है। यह साधन ऊंचे लोकों में सुरत को ऊंचा चढ़ाने में सहायता देता है। साधन बहुत सरल है। जैसे नीचे चार श्रेणियां बताई हैं–

''उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा व मूर्तिपूजा धमाधमा।।''

उत्तमा में सहज ही शब्द व प्रकाश का अनुभव होता रहता है। मध्यमा में साधन के समय में शब्द का अनुभव या शब्द व प्रकाश दोनों का अनुभव होता रहता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीर्थ यात्रा करना अधमा में आता है और मूर्तिपूजा सबसे निकष्ट में आती है।

ये सभी श्रेणियां अपने–२ स्थान पर अति सुन्दर हैं। जो आस–विश्वास लेकर इस मार्ग पर चल पड़ा है, वह एक दिन अपनी मंजिल पर अवश्य पहुंच जायेगा।

योग साधन की जितनी भी विधि हमने समझी है तथा जो अब भी प्रचलित है वो सब अपने–२ स्थान पर ठीक है। परन्तु जैसे कहा है –

''साध हमारे सभी भले, अपनी-२ ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, सबमें है सिरमौर।।''

यह शब्द योग बहुत सहज है और बहुत आनन्दमय कोष से शुरू होता है। इसमें साधक की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति सहज में होती रहती है। यह साधन भी बहुत सहज का है और इसमें कोई हानि नहीं होती है। मनुष्य अपनी प्रकति, अधिकार, संस्कार के अनुसार और ध्यान की एकाग्रता के अनुसार उसका अनुभव करता है। जैसे मैंने खुद ने 1956 में बहुत थोड़े समय में परम दयाल जी की संगत से इसकी अनुभूति की और संसार के सब काम करते हुए, सब हालातों से गुजरते हुए अभी तक इसका अनुभव करता आ रहा हूं। मुझे आंख,कान तथा मुंह बन्द करने की आवश्यकता नहीं रही तथा न किसी विशेष आसान को साधने की जरूरत पड़ी। सत्संग देते हुए, बोलते हुए, भोजन करते हुए, चलते हुए, हर हालात में सहज ही इसे अनुभव करता रहता हूं। दूसरा डॉ० कमला जो मेरे प्रति श्रद्धा, विश्वास रखती है उसको शब्द और प्रकाश का अनुभव आसन लगा कर तथा आंख, कान, जुबान बन्द करके होता है। इस विधि को ध्यान धारणा कहा है। इसके अतिरिक्त

दो साधवी एक जयपुर की और एक जीन्द हरियाणा की ऐसी हैं जो ध्यान में बैठी हुई मेरा सत्संग सुनती हैं। इनमें से एक जीन्द वाली साधवी कहती है कि जब वह ध्यान में बैठती है तो मैं (कैप्टन लालचन्द) प्रकट होकर उसको बहुत ऊंचे सफेद रंग के प्रकाश में तैराता हूं, जबकि मैंने अभी तक प्रकाश का कोई अनुभव नहीं किया है। कहने का भाव यह है कि यह योग साधान के अनुभव मन की पवित्रता, विश्वास और एकाग्रता का ही फल है। जो पहले हमारे ऋषि, मुनि, सन्त, महापुरूष हुए हैं, उन्होंने अपने समय में अपने अनुभव, समझ व विवेक के आधार पर लिखा है, वह उस समय के अनुसार ठीक था। राधास्वामी योग जो उद्गीत व प्रणव के रूप में पहले भी था, उसको शब्द योग के नाम से अब बहुत ही आसान और सरल तरीके से बताया गया है जो इस बुद्धि, विज्ञान के युग में योग की सबसे उत्तम विधि है। मैंने अपने पूरे जीवन में इसका अनुभव किया है और मेरे प्रति विश्वास रखने वाले कुछ सज्जन भी इसका अनुभव कर रहे हैं।

अतः अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि जो अध्यात्म विषय का योग साधन करना चाहता है, वह किसी जीवित वक्त गुरू की शरण में जाए। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है –

''गुरू तो पूरा खोज रे तेरे भेले की कहूं।
शब्द रता गुरू खोज रे तेरे भले की कहूं।।''

और ऐसे महापुरूष से विधि सीख कर उसकी देख रेख में साधान करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे कहा है –

''बिन गुरू घट में राह न चलना।
राह में विध्न अनेक न मिलना।।''

प्यारे सज्जनों मैं 1962 से सत्संग देता आ रहा हूं। मेरे सत्संग से जिसका विश्वास बन जाता है, उसके दुनियावी सब काम हो जाते हैं। कोई मेरे से प्रसाद बना कर ले जाते हैं तो उनके विश्वास के अनुसार उनके काम हो जाते हैं। किसी के

अन्दर मेरा रूप जागते हुए, स्वपन में, साधन में प्रकट होकर उनकी सहायता करता है। परन्तु सच्चाई यह है कि मुझे कुछ पता नहीं होता कि किसने मेरा ध्यान किया और मेरे रूप ने उसकी क्या सहायता की? तो फिर यह रहस्य क्या है? मैंने इसको यह समझा है कि मनुष्य के मन में बहुत शक्ति है। यदि उसका मन पवित्र है तो जो भी मेरा रूप या उसके इष्ट का रूप प्रकट होकर कहेगा तो वह सब सत्य होगा और यदि मन अपवित्र है और रूप प्रकट होकर कुछ कहेगा तो यह बात गलत भी हो सकती है। तो यह अनुभव मनुष्य के विश्वास, मन की पवित्रता तथा ध्यान की एकाग्रता पर आधारित है। गुरू जो अनुभवी है, वही मनुष्य का पथ प्रदर्शन कर सकता है। अतः गुरू खोजो और सोच समझ कर गुरू खोज कर फिर उसको पूर्ण भगवान् का रूप मान लो। इससे आपका सब काम होता जायेगा। तो योग में मुख्य बात यह हुई कि जीवित पूर्ण विवेकी गुरू होना चाहिए। यह योग युक्ति के जितने भी साधन हैं, वह वक्त गुरू, पूर्ण विवेकी के आधीन हैं। जैसे –

गुरू ही के परताप सूं, मिटे जगत की व्याध।
रोग दोष दुख ना रहे, उपजै प्रेम अगाध।।

एक बात मेरे अनुभव में और आई है जो विज्ञान पर आधारित है, जिसको Law of Radiation (विकिरण धारा) कहते हैं, वह मेरे साथ घटित हुई है। मैं 1956 में पं० फकीरचन्द जी महाराज जो होशियारपुर पंजाब के रहने वाले थे, उनके पास यह जानने के लिए गया था कि भजन क्या होता है? जिसको सब योगी, साधु, सन्त कहते हैं? उन्होंने कई बात बताई जो मुझे अभी पूरी याद नहीं परन्तु एक बात जो उन्होंने अपने गुरू की बताई वह यह कि उनके सामने उनके गुरू की मूर्ति रखी हुई थी और उस मूर्ति की तरफ ईशारा करके उन्होंने कहा कि जब ये महात्मा जीवित थे तब मैंने इनको कुल मालिक का रूप मानकर अपने सभी दुनिया के व धर्म सम्बन्धी कार्य उनसे पूछ कर किए, जिससे मेरे दुनिया के सब काम पूरे हुए और अब जब

मैं समाधि में जाता हूं तो मैं परमात्मा का ही रूप बन जाता हूं। यदि तुम इस मूर्ति पर कूड़ा–कर्कट डाल दो या कोई अपशब्द बोल दो तो यह मूर्ति आपका कोई नुकसान नहीं करेगी। फिर यह बात कर उन्होंने मुझसे पूछा कि इससे तुम क्या समझे? मैंने कहा–महाराज जी। मैं तो कुछ भी नहीं समझा। तब उन्होंने कहा कि धर्म केवल विश्वास का विषय है। मेरा विश्वास था कि ये कुल मालिक है और ये जो कुछ कहेंगे, वह सब सच होगा। और यदि आपका इस पर कोई विश्वास नहीं तो आपको कोई लाभ या नुकसान नहीं होगा। इतना कहकर वह समाधि में चले गये और मैंने दो–तीन मिनट में ही यह फैसला कर लिया कि ये बूढ़े सज्जन सत्य कह रहे हैं अतः मैं इनको ही कुल मालिक या परमात्मा मान लेता हूं। मैं आंख बन्द करके बैठ गया और 15-20 मिनट के अन्दर ही वह राम नाम मेरे मस्तिष्क के अगले भाग में इतना आनन्द सहित प्रकट हुआ जो अवर्णनीय है। महाराज जी के समाधि से आंखे खुलते ही मैंने उनको अपना हाल बताया तो उन्होंने कहा कि यही भजन है और इसी को नाम कहते हैं। तो मुझे नाम का अनुभव पं० फकीरचन्द जी की विकिरणधारा से सहज में हो गया। इसमें कुछ कहने सुनने की आवश्यकता ही नहीं हुई। अर्थात् मैंने उस समय सब विचारों को छोड़ दिया था इसलिए सूक्ष्म लोक का मुझे कोई अनुभव नहीं हुआ और मैं सीधा सार शब्द में आकर ठहर गया। इस अनुभव की चर्चा कबीर साहब अपने आखिरी मंजिल पर करते हैं। जैसे कहा है –

सन्तो सहज समाधि भली।
गुरू प्रताप भयो जा दिन से
सुरत न अन्त चली।
शब्द निरन्तर मनवा राता
मलिन वासना त्यागी। .....
.....

तो इस बात से स्पष्ट है कि यदि कोई साधक अपने सब तरह के विचार छोड़ दे तो वह सीधा कारण लोक के अनुभव में जा सकता है जो केवल सार शब्द का अनुभव है और इसमें किसी प्रकार की कोई सिद्धि नहीं है और न कोई नजारा है, केवल यहां सम अवस्था रहती है, जिससे अधिकतर शान्ति बनी रहती है परन्तु इस लोक में रहते हुए कोई भी सन्त या परम सन्त बाहर के प्रभावों से जब मन के मण्डल पर आता है तो वह बच नहीं सकता। मैं भी कभी–२ बाहर के प्रभावों से मन के मण्डल पर आ जाता हूं परन्तु गुरू कपा से जल्दी ही सम्भल जाता हूं।

तो बाहरी सतगुरू की कपा से मनुष्य माया लोक (विचारों) से निकल कर अन्तर के सतगुरू से मिल जाता है और इस अन्तर के सतगुरू के चरण प्रकाश हैं और सतगुरू शब्द स्वरूपी है जैसे –

''सतगुरू शब्द स्वरूप है, रहे अरस मंझार।
तू भी सुरत रूप है, रहो गुरू की लार।।''

''नैनन में गुरू रूप है, श्रवण में गुरू शब्द।
जो-२ माने भाग से, सो-सो उतरे पार।।''

तो मनुष्य स्वयं अनुभव करके जान ले कि वह क्या है?

(19)

प्राण-योग

प्राचीन काल में प्राण–योग का अभ्यास किया जाता था। अब भी अध्यात्म में सफलता पाने के लिए योगी उसी का अनुसरण करते हैं जिसे सन्त मत में आज के समय में निरर्थक माना जाता है। प्राण का स्थान प्रकति में है। प्राण श्वास–प्रश्वास

अर्थात् श्वास में आने जाने वाली वायु नहीं है, किन्तु यह विशेष शक्ति का भण्डार है जो स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रचनाओं को सम्भाले हुए है। प्राण सबसे अधिक व्यापक है। प्राण क्या है? इसकी व्याख्या करना वास्तव में कठिन है। संस्कत के कोषों में इसके भिन्न–२ अर्थ हैं। इसे ब्रह्म भी कहा गया है, इसे जीवन भी कहा गया है, जीवन शक्ति और शक्ति भी कहा गया है। इन सबका अर्थ प्राण ही है। पथ्वी पर प्राप्त समस्त शक्तियां तथा समस्त भौतिक जीवन का उद्‌गम सूर्य ही है जो प्राण का स्रोत है। दश्य तथा अदश्य विकिरण धारा (Radiation) और ताप तथा शक्ति की लहरें सब उससे निकलती हैं। जैसा बाहर है वैसा ही वह भीतर मनुष्य के शारीरिक ढांचे में है। जैसे – ''जो पिण्डे सो ब्रह्मण्डे''। आन्तरिक सूर्य तथा बाहय सूर्य दोनों हर तरह से परस्पर मिलते–जुलते हैं। जब सूर्य चमकता है तो वह कम्पायमान होता है और यह कम्पन प्रकति में ज्योति तथा समस्त अन्य हलचलों को उत्पन्न करता है। प्राणि जगत, वनस्पति जगत तथा प्रकति की अन्य रचनाओं को जीवन प्रदान करता है। वह कम्पन्न और विकिरण पांच प्रकार के हैं। संस्कत ग्रन्थों और योग पुस्तकों में भी पांच प्रकार के प्राण गिनाए गए हैं– प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान।

1. **प्राण** - प्राण सभी इन्द्रियों को अपने–२ काम में प्रवत होने की शक्ति देता है। दूसरा उसका कार्य प्राणि–मात्र को श्वास क्रिया द्वारा जीवित रखना है। इस प्राण का स्थान ह्रदय में है।
2. **अपान** - यह मल–मूत्र को त्यागने में सहायक है और यह वायु इन इन्द्रियों को नियन्त्रित करती हुई नीचे की ओर जाती है। इसका स्थान गुदा में है।
3. **व्यान** - यह सब जगह प्रवत्त हो रही है। यह सम्पूर्ण शरीर में व्यापक है तथा शरीर के विभिन्न भागों को नियन्त्रित करती है, नियमित रखती है और जीवित रखती है और सारे पिण्ड को एक सूत्र में बांधे रखती है। शरीर में व्यान का स्थान हर जगह है।
4. **उदान** - उदान वह वायु है जो ऊपर चढ़ती है। इसका स्थान

कण्ठ में है।

5. **समान** - यह नाभि स्थान की शारीरिक ताप (गर्मी) को तीव्र करती है, पाचन क्रिया को नियमित करती है। इसका स्थान नाभि में है।

अब अध्यात्म ज्ञान के लिए प्राण–योग की कोई आवश्यकता नहीं है। योग के लिए केवल ध्यान आवश्यक है और कुछ नहीं। भौतिक पदार्थों की ओर से ध्यान हटाना और अध्यात्म की ओर ध्यान लगाना काफी है। बहुत से साधक सज्जन जो अब भी पुरानी पद्धति का अनुसरण करते हैं और योग साधन के समय श्वासों को उत्तेजित करने का प्रयास करते हैं, यह सब अध्यात्म में अनावश्यक हैं। जैसे आप दूसरे दैनिक कार्य करते हुए कभी प्राण–योग नहीं करते हैं और कार्य अपने आप होता रहता है तथा प्राण सहज ही अपना काम करता है। मेरा भाव आप समझ गए होंगे कि मैंने कभी प्राण–योग की तरफ विचार हीनहीं किया और सहज ही शब्द–योग का अनुभव अधिक समय बना रहता है न मेरे गुरू महाराज ने कभी कोई प्राण योग किया। परन्तु अब मैं बहुत से साधकों को यह करते हुए देखता हूं अतः अपना अनुभव उनकी सेवा में लिख रहा हूँ कि सज्जनों, पहले लोगों को यह समझ थी कि बिना प्राण योग के अध्यात्म का साध ान नहीं हो सकता और अब भी बहुत से साधक इसी भ्रम में हैं परन्तु अब इस आधुनिक युग में यह प्रमाणित हो चुका है कि बिना प्राण–योग के किसी अनुभवी गुरू से यह विधि सीख कर शब्द–योग का अनुभव किया जा सकता है।

यही बात राधास्वामी योग में कही गई है और यही बात महर्षि शिवव्रत लाल जी ने आनन्दयोग में लिखी है और यही मेरे पूरे जीवन का सार है कि योगी सज्जनों को अध्यात्म के लिए प्राणों के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ने का भय है। यदि एक बार यह सन्तुलन बिगड़ जाए तो इसका कोई इलाज नहीं है। प्राण अलग ही स्वतन्त्र शक्ति हैं। शब्द योग से शरीर, मन, आत्मा व सुरत

में समता बन जायेगी। इसमें कुछ करने धरने की आपको आवश्यकता नहीं, केवल जीवित पूर्ण अनुभवी गुरू की तलाश करो। इस बुद्धि विज्ञान के युग में योग साधन की बहुत ही सहज आधुनिक विधि है – शब्द–योग, जिसके और भी बहुत से नाम हैं जो मैं पहले बता चुका हूं। प्रकाश का अनुभव मैंने नहीं किया है क्योंकि मैं पहले ही दिन प्रकाश के मण्डल से ऊपर चला गया। अतः मुझे आवश्यकता नहीं हुई कि फिर नीचे आकर प्रकाश का साधन करूं। परन्तु मेरे प्रति विश्वास रखने वाले कई सज्जन प्रकाश का अनुभव कर रहे हैं, जो इसे मेरी कपा मानते हैं जबकि मैंने खुद ने कभी अपने साधन में इस प्रकाश का अनुभव नहीं किया है यह तो उन सज्जनों की मन की शक्ति है। मैंने इस प्रकाश के अनुभव को यह समझा है कि जिस साधक का शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है तो ध्यान में उसके ध्यान की एकाग्रता से उसकी विकिरणधारा ऊपर को चढ़ती है और यह जाकर वीर्य जो जीवन शक्ति है उससे सम्पर्क करती है और इस प्रकाश का अनुभव करती है जो आत्मपद कहलाता है। कई सूर्य, चांद और बहुत गहरे सफेद रंग के प्रकाश का अनुभव उसे होता है जिसके आनन्द का कोई वर्णन नहीं किया जा सकता। बाहर से कोई सूर्य नहीं आता मनुष्य के अन्दर ही सूर्य, चांद, तारा तथा ऊपर के सब लोकों का बिम्ब है, जिसको योगी अपने ध्यान की एकाग्रता, अधिकार, संस्कार के अनुसार अनुभव करता है। तो जो सज्जन ध्यान में प्रकाश का अनुभव चाहते हैं, वे पहले अपने शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य को कायम करें हम गहस्थी हैं, अतः इस बात का ज्ञान न होने के कारण वीर्य शक्ति को स्वाद के लिए नष्ट कर देते हैं। यही अशान्ति, बेचैनी और सब प्रकार के भ्रम, डर, चिन्ता का कारण हैं। भाव यह है कि सब कुछ आपके अन्दर है। अनुभव के लिए पहले अपनी योग्यता बनाओ। योग में प्रकाश के अनुभव का विशेष आनन्द है। यह आत्मपद है। इस आनन्द की कोई दूसरी मिसाल नहीं है परन्तु जैसा सैक्स (विषय भोग) का २ या ३

मिनट का आनन्द है, इससे भी कई गुणा अधिक प्रकाश का योगी दो–तीन घण्टे तक साधन में आनन्द का अनुभव करता है। ऐसा योगी काम, क्रोध से बहुत ऊपर उठ जाता है। परन्तु यह साधन प्रकाश के मण्डल का है। उससे आगे तो मंजिल तक इस सुरत को ले जाने वाला मार्ग शब्द योग ही है। तो प्रकाश का अनुभव आनन्द स्वरूप है, जो आत्मपद है और शब्द का योग परम शान्ति का है। यह शब्द योग अति सहज, समता व परम शान्ति का सबसे उत्तम योग है और यही धुरधाम तक ले जाने वाला है।

पहले आप यह बात समझ लें कि आखिर यह प्रकाश है क्या और कहां से आता है? मनुष्य जो भोजन करता है, वह पथ्वी से पैदा होता है। पथ्वी की गर्मी और सूर्य, चन्द्र व ऊपर के ग्रह की रोशनी यदि पथ्वी पर न आए तो पथ्वी पर भोजन–सामग्री पैदा नहीं होगी। एक दिन का भोजन यदि ठीक से हजम होगा तब किसी उम्र तक एक बून्द खून की बनेगी। 40 बून्द खून की बनने पर एक बून्द वीर्य की बनेगी, जिससे मनुष्य पैदा होता है। मनुष्य में यह वीर्य ही जीवन शक्ति है। इसमें सूर्य, चांद तथा सभी ग्रहों का प्रकाश तथा ऊपर के लोकों का सब एक्स (प्रभाव) बीज रूप में है। भाव यह है कि योगी किसी विधि से मन एकाग्र करता है तब जो भी उसके अन्तर में प्रकाश का अनुभव होगा, वह उसके वीर्य शक्ति जो प्रकाश का ही जीवन है, उसका अनुभव होगा और लोक–लोकान्तरों का अनुभव भी उसको प्रकाश में होगा। यानी योगी की प्रकति के अनुसार उसके अनुभव होंगे। तो आत्मा या जीवन शक्ति क्या हुई? प्रकाश। परन्तु प्यारे सज्जनों। जैसे मैंने पहले भी चर्चा की है कि प्रकाश का अनुभव वही साधक करेगा जिसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है। जो भी ऊपर ब्रह्मण्ड में है, वही सब मनुष्य के इस शरीर में छोटे रूप में है। मनुष्य की सुरत जो यहां खेल खेलने आई है, वह कुल मालिक का अंश रूप है। मनुष्य छोटे स्तर पर एक पूरा ब्रह्माण्ड है।

सारांश यह है कि इस प्राण–योग का आध्यात्मिक अनुभव में कोई मतलब नहीं है। जैसा मैंने पहले लिखा है कि यह प्राण योग पुराने समय की बात थी। उस समय इसके विशेष अनुभवी महापुरूष होते थे। राजयोग भी यही था, जिसमें सुमिरन, ध्यान श्वास के साथ किया जाता था। अब इसकी जरूरत नहीं है और इससे दिमाग का सन्तुलन बिगड़ने का बहुत ही खतरा रहता है, जिसका कोई इलाज नहीं है। यह पुरानी लकीर पीटने वाली बात है। इस युग में अत्यन्त सरल विधि शब्द योग की है जो राधास्वामी दयाल ने बहुत खोल कर अपने अनुभव के आधार पर बताई है। कबीर साहब महर्षि शिवव्रतलाल जी, पं० फकीरचन्द जी का यह शब्द योग का ही साधन रहा है और मैंने स्वयं भी अपने जीवन में इस शब्द योग के साधन से ही तत्त्व का अनुभव किया है। अतः मेरे अनुभव के अनुसार यह प्राण विशेष जीवन शक्ति है और इसका काम बिल्कुल स्वतन्त्र है। आजकल जो ये गुरू मत व तन्त्र मत के साधक प्राण योग को करते हैं, वे सब पुरानी लकीर पीट रहे हैं। अध्यात्म ज्ञान के योग साधन में इसकी बिल्कुल जरूरत नहीं है। यह मेरा अनुभव है, दावा कोई नहीं है।

(20)

राधास्वामी योग

शब्द

चलो री सखि आज पिया से मिलाऊं।
तन-मन-धन की प्रीत छुड़ाऊं।।
पुत्र कलित्र जाल छुड़वाऊं।
सुन्न मण्डल धुन अजब सुनाऊं।।
गगन तख्त पर जाय बिठाऊं।
तीन लोक का राज दिखलाऊं।।

त्रिवेणी तीर्थ परसाऊं।
मन माधो से खूंट छुड़ाऊं।।
काल चक्कर से तुरन्त बचाऊं।
कर्म काट निज घर पहुंचाऊं।।
महासुन्न और भंवर गुफा से,
सतपुरूष दीदार कराऊं।।
दीन दूरबीन पुरूष एक ऐसी,
अलख अगम के पार समाऊं।।
राधास्वामी पद अब हम जाना,
कहन सुनन का लगा ठिकाना।।

यह राधास्वामी वाणी का शब्द है। इस शब्द में गुरू से अन्तिम परलोक तक पहुंचने की विधि बहुत ही साफ लिखी है। वैसे सन्तों ने इस अध्यात्म के मार्ग को बहुत ही सरल व आसान किया है, जिसमें मनुष्य अपनी रोजी–रोटी कमाते हुए, बाल–बच्चों में रहते हुए, छोटे पद से लेकर बड़े पद तक काम करते हुए इस अध्यात्म का लाभ सहज में उठा सकता है और इसी ही जीवन में जीते हुए, जीवन का पूरा रस लेते हुए मुक्ति, निर्वाण व मोक्ष की अवस्था का अनुभव कर सकता है। परन्तु इस मार्ग में गुरू की अत्यन्त आवश्यकता है। यह राधास्वामी पंथ भक्ति मार्ग का है। गुरू के प्रेम और विश्वास से जब मन एकाग्र हो जाता है तो अन्तर का प्रकाश व शब्द खुल जाता है। इसी को ही नाम कहते हैं। इस योग में सत्संग और सुरत–शब्द का साधन दोनो ही आवश्यक हैं। सुरत से शब्द को सुनना और साथ–२ सत्संग करते रहना जरूरी है। इस प्रकार राधास्वामी योग इस अध्यात्म ज्ञान को अनुभव करने की बहुत ही आसान विधि है। यहां राधा को सुरत और स्वामी को परमात्मा कहा गया है। जैसे कहा गया है –

राधा आदि सुरत का नाम, स्वामी आदि शब्द पहचान
कबीर धारा अगम की, सतगुरू दई बहाय।
ताहि उलट सुमिरन करो, साई संग मिलाय।।

यह राधास्वामी योग सुरत–शब्द योग कहलाता है इसमें केवल सुरत से शब्द को सुनने का प्रयोजन है। अतः नाम लेने वाले को चाहिए कि वह अपनी सुरत (तवज्जह) को नाम में लगा दे। अभ्यास के इस नियम से वह अपने इष्ट पद तक आसानी से पहुंच जायेगा। यही साधन सहज योग है।

इस राधास्वामी योग में तीन बातें मुख्य हैं – 1. सतगुरू– यह सतगुरू पूर्ण विवेकी व अनुभवी होना चाहिए। वैसे राधास्वामी वाणी में पूरे गुरू की विशेष विशेषता बताई है। जैसे –

गुरू वही जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहीं सेही।
शब्द कमावे सो गुरू पूरा, उन चरणन की बन जा धूरा।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे, शब्द कमाओ तुम तन मन से।

अर्थात् वह गुरू अन्तर के सार शब्द या निज नाम का अनुभवी व अभ्यासी होना चाहिए।

2. सतनाम– गुरू जो नाम का साधन बताए, वही सतनाम है।
3. सत्संग – मनुष्य को पूर्ण विवेकी सतगुरू का सत्संग जब भी समय मिले, अवश्य सुनना चाहिए।

बस यही तीन बातें मुख्य हैं जिसमें सब कुछ आ जाता है।

आजकल राधास्वामी पंथ में बहुत भीड़ देखने को मिलती है। परन्तु यह सब कोई अध्यात्म के विचार से गुरू के पास नहीं जाते हैं। यह तो काल कर्म के मारे यानी दुनिया के दुःखों के मारे सन्तों की शरण में जाकर सहारा लेते हैं और सन्त दयालु होते हैं। वह जीव को आशावादी संस्कार देते हैं। यदि मनुष्य का विश्वास बन जाता है तो उसके दुनिया के काम उसके विश्वास से होते रहते हैं। और यदि उसकी लगन सच्ची है तो सत्संग सुनते–२ समझ, विवेक से उसे किसी दिन अनुभव भी हो जायेगा। मैं छोटी आयु से ही इस तत्त्व–ज्ञान या आत्म ज्ञान का अनुभवी हूं। इसलिए ये जितने महापुरूष हैं, वे जीव की प्रकति देखकर ही उसे साधन व समाधि लगाने के अलग–२ विधि, तरीके या ढंग बताते हैं। मुख्य बात मनुष्य का मन ठहराने या मन की एकाग्रता की है, क्योंकि मनुष्य का मन महा

चंचल है। बस इसको एकाग्र करके ही अन्दर का अनुभव किया जा सकता है। राधास्वामी वाणी का एक शब्द लिखता हूं। इसमें गुरू के प्रति प्रेम, भक्ति, श्रद्धा व विश्वास है और अन्दर के शब्द और प्रकाश के अनुभव की बात है।

शब्द

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में, गुरू होय जीव चिताये।
जिन-२ माना वचन समझ के, तिन को संग लगाये।।

कर सत्संग सार रस पाया, पी-पी तप्त अधाये।
गुरू संग प्रीति करी उन ऐसी, जस चकोर चन्दाये।।

गुरू बिन कल नहीं पड़ती घड़ी, दम-२ मन अकुलाय।
जब गुरू दर्शन मिले भाग से, मगन होत जस बछड़ा गाय।।

ऐसी प्रीति लगी जिन गुरूमुख, सो-२ गुरू अपनाये।
तन की लगन भोग इन्द्री के, छिन में सब विसराये।।

गुरू की मूर्ति बसी हिये में, आठ पहर गुरू संग रहाये।
अस गुरू भक्ति करी जिन पूरी, ते-ते नाम समाये।।
स्वाति बूंद जस रटत पपीहा, अस धुन नाम लगाये।
नाम प्रताप सुरत अब जागी, तब घट शब्द सुनाये।।

शब्द पाय गुरू शब्द समानी, सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये।

अलख शब्द और अगम शब्द ले, निज पद राधास्वामी आये।
पूरा घर पूरी गति पाई, अब कुछ आगे कहा न जाये।।

मैं हिन्दू हूं। मेरा जन्म राजस्थान के पिछड़े हुए इलाके के एक गांव में हुआ था। मेरे माता–पिता किसान थे, अतः

धर्म–कर्म के कोई संस्कार मेरे मन पर नहीं थे। मैं छोटी आयु में ही 1941 में सेना में भर्ती हो गया था। युद्ध का समय था अतः बहुत जल्दी ही अधिकारी बन गया। युद्ध के बाद हम भारत आ गए। मैं सीनियर सूबेदार था। मुझे रात की डयूटी के अधिकारी रिर्पोट देते रहते थे। एक दिन मुझे एक सूबेदार धर्मचन्द की शिकायत मिली कि वह रात को सोता नहीं है, कम्बल ओढ़ कर बैठा रहता है। मैंने उस सुबेदार को बुलाकर रात को न सोने का कारण पूछा तो उसने कहा कि मैं रात को भजन करता हूं। जब मैंने उससे इस भजन के बारे में जानना चाहा तो उसने कहा कि यह भजन गुरू जी ही बता सकते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि वह व्यास के गुरू बाबा सावन सिंह जी के शिष्य थे। उस दिन से मुझे इस बात की लगन लग गई कि इस भजन के बारे में जरूर पता करूंगा कि यह क्या होता है? और मैं इस भजन को जानने के लिए कई महात्माओं से मिला। आखिर ब्यास गया। वहां उस समय बाबा चरण सिंह जी महाराज गुरू थे। उनसे कई बार मिला, परन्तु तसल्ली नहीं हुई। आखिर कौन गुरू इस बात को इतनी जल्दी बता सकता है? क्योंकि यह अनुभव का विषय है। फिर किसी विशेष संस्कार के कारण पण्डित फकीर चन्द जी महाराज के घर, 18 रेलवे मण्डी, होशियारपुर (पंजाब) पहुंचा। वहां उनके घर में उनके सामने बैठे–२ 15-20 मिनट में वह भजन मेरे सिर के अगले भाग में प्रकट हो गया और मैंने पं० फकीरचन्द जी महाराज को बताया कि मैं इस स्थान पर बड़े गजब के आनन्द का अनुभव कर रहा हूं। उन्होंने कहा यही वह भजन है जो तुम जानना चाहते थे और इसी को नाम कहते हैं। तो प्यारे सज्जनो। न तो उन्होंने मुझे कोई नाम बताया और न ही किसी धर्म पंथ का नाम बताया। उस दिन से आज तक मैं उस नाम या शब्द का अनुभव करता आ रहा हूं। बाद में जब मैंने कई बार उनके सत्संग सुने तब मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे गुरू जी राधास्वामी पंथ के हैं।

अब आप ही सोच लो कि मेरा कौन सा धर्म, सम्प्रदाय या पंथ है? परन्तु यह घटना तो मेरे साथ ही घटी थी। दूसरा कौन विश्वास करेगा कि ऐसे ही 15 या 20 मिनट में पं० फकीरचन्द जी के पास बैठते ही शब्द खुल जाए या नाम गूंज जाए? क्योंकि भक्तों ने इस ज्ञान के लिये घर–बार छोड़े, भेष बदले, दाढ़ी–केश रखे और बहुत कठोर तप किए, तब जाकर वे महात्मा कहलाए और भजन का फिर भी कुछ मालूम नहीं कि वे कौन से दर्जे पर रहे। जैसे शास्त्रों में कहा है –

कोटि-२ मुनि यत्न कराहिं।
फिर भी राम अन्त नहीं आहिं।।

मेरा कहने का भाव यह हे कि विश्व में ये जितने भी धर्म, सम्प्रदाय व पंथ हैं, ये सब महापुरूषों ने अपने अनुभव व विश्वास के अनुसार लिखे हैं। जो लोग जिस धर्म में विश्वास रखते हैं, उनके काम हो जाते हैं, क्योंकि धर्म विश्वास का विषय है। न कोई धर्म बड़ा है न छोटा। अज्ञान और भ्रम के कारण मनुष्य अपने पंथ या सम्प्रदाय को दुनिया में सबसे बड़ा और दूसरों को छोटा मानता है। वास्तव में किसी धर्म सम्प्रदाय में कोई कमी नहीं है। सच तो यह है कि महापुरूषों ने जब अपना अनुभव बताया था और उस समय जो सच्चाई थी, वह सब बदल गई है इसका एक कारण तो यह है कि बुद्धिमान् लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म के नियमों में कुछ परिवर्तन कर दिया है और दूसरा वो महापुरूष अब हाजिर नहीं है। परन्तुजहां तक विश्वास वाली बात है, वह अब भी कायम है। परन्तु अनुभव की बात तो अनुभवी गुरू ही बता सकता है। अब राधा स्वामी योग जो बहुत ऊंचा व इस समय का पंथ है तो इसमें भी यह कमी है कि एक आश्रम का सत्संगी दूसरे आश्रम के सत्संगी से नफरत करता है और एक गद्दी का गुरू दूसरी गद्दी के गुरू को छोटा समझता है। यह हालत इस राधास्वामी पंथ की है। इसी प्रकार दूसरे सम्प्रदायों के सज्जनों को देखकर मैंने यह समझा है कि जिस पंथ या सम्प्रदाय के लोग हैं, वे अधिकतर

कट्टरपंथी बन गए हैं। उनको भ्रम व शंका है।

मेरे गुरू महाराज जी ने तो मानवता का एक ही धर्म बताया है – 'मानव धर्म' या मजहबे इन्सानियत क्योंकि परमात्मा एक है और सब मुनष्यों की आत्मा प्रकाश स्वरूप है। धर्म का अर्थ है अपने आप को जान लेना कि आप क्या हैं? बाकी रही विश्वास की बात, सो जहां आपका विश्वास हो, रखो। फल जो मिलना है, वह आपके विश्वास का मिलना है। बाहर से कुछ नहीं आता है। आपका ही मन आपके विश्वास के अनुसार रूप बनाकर सामने आता है। अतः राधास्वामी पंथ कोई अलग धर्म नहीं है। यह एक इस समय का सन्त मत का पंथ है जो केवल समय के अनुसार योग की एक विधि है। मैंने अपना भाव व अनुभव बताया है कि मैं पूरी मनुष्य जाति की एकता में विश्वास रखता हूं और मेरी नजर सब मनुष्यों के लिए एक है –

''जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा, तेरा हूबहू है।।''

''अब आदमी हमारी नजर में कुछ और है।
जब से सुना है यार लिबासे बशर में है।।''

(21)

अन्तिम मंजिल का भेद

साधन, अभ्यास, योग यह सब मन को ठहराने के लिए हैं। कोई आदमी चाहे कितना भी योग–साधन करे, इससे उसे आनन्द मिलेगा, सिद्धि शक्ति मिलेगी और वह संसार में साधु, महात्मा भी कहलायेगा, परन्तु सत् पद में वह तभी ठहर सकेगा जब उसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम होगा। दूसरा

बाहर का गुरू उसको आगे का भेद देगा। यह भेद जीवित महापुरूष जो पूर्ण विवेकी और अनुभवी है, वह देगा। कोई भी गुरू या पैगम्बर जो हाजिर नहीं है, इस भेद को बताने में सहायता नहीं कर सकता है। इसलिए मनुष्य को जो मंजिल पर पहुंचना चाहते हैं, यह पुस्तकें या गए हुए गुरू, पीर, अवतार या पैगम्बर मंजिल का भेद नहीं दे सकते हैं। जैसे नीचे इस शब्द में कहा गया है –

गुरू ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भरम का।
बल पाया अब विरह मरम का, भटकन छूटा दौरो हरम का।
बरसन लागा मेघ कर्म का, संशय भागा जन्म-मरण का।
तोड़ दिया सब जाल निगम का, सुख पाया अब हम दमदम का।
फल पाया आज हम शम दम का, भंवर हुआ मन सेत पदम् का।
फूंक दिया घर लाज शर्म का, काटा फन्दा नियम धर्म का।
ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा, भक्ति भाव का पहना जोड़ा।
भक्ति भाव की महिमा भारी, जानेंगे कोई सन्त विचारी।
सतनाम सतपुरूष अपारा, चौथे माहिं करे दरबारा।
सुरत शब्द मार्ग कोई पावे, सो करे दरबारा।
सुरत शब्द मार्ग कोई पावे, सो हंसा चढ लोक सिधावे।
सो मार्ग अब राधास्वामी गाई, कोई-२ प्रेम भक्ति से पाई।।

इस भेद को पाने के बाद क्या करना है? यह भक्ति करनी है, जिसका संकेत ऊपर के शब्द में है। अब यह भेद क्या है? यह भेद अपने सत्संगों में स्पष्ट बताता हूं, परन्तु मेरे सत्संग का लोग लाभ नहीं उठाते और न उसे गौर से सुनते हैं और यदि कोई सुनता भी है तो उसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम नहीं, इसलिए उसका मन वहां ठहर नहीं सकता है।

आगे एक शब्द में और बताते हैं। यह राधास्वामी पंथ चलाने वाले हजूर सालिग्राम जी महाराज का है –

गुरू को ऊपर ऊपर गाता, गुरू को दिल भीतर नहीं लाता।
गुरू का दर्शन बाहर करता, चित्त में दर्शन कभी न धरता।

काज तेरा कैसे हो भाई, ऊपरी गुरू संग लगन लगाई।
भीतर धन और मान विराजा, ऊपरी नाम गरीबी साजा।
भीतर काम और क्रोध बसावे, ऊपरी शील क्षमा दिखलावे।
भीतरी लगन न गुरू से लागी, ऊपरी लगन करे क्या पाजी।
गुरू कैसे तेरे होए सहाई,शब्द की प्रीति न अन्दर लाई।
कौन विधि तोहि कहूं समझाई, भाग कुछ ओछा ही ते पाई।
भजन करे तू न सांचा, शरण में गुरू के है तू कांचा।
जरा सी ताड़ मार नहीं सहता, निरादर करे जगत में बहुता।
दुखों से डर कर कुछ-२ लगता, गए दुख वहीं तुरन्त भटकता।
नाम रस पाया नहीं अविनाशी, जगत में हुआ न कभी उदासी।
जतन कोई समझ नहीं अब आता, गुरू की मेहर बिना क्या पाता।
गुरू की मर्जी कभी न परखी, मेहर कहो आवे कैसे धुर की।
खबर नहीं पाई ते निज घर की, शब्द में सुरत न तेरी सरकी।
मर्म यह मन का सब ही गाया, सुनो राधास्वामी कहत सुनाया।

इस वाणी में सब कुछ बताया गया है, परन्तु जो भेद अगम का है और जो योगी व साधकों के लिए जरूरी है, वह तो रहस्य में है। परम दयाल पं० फकीरचन्द जी महाराज ने अपने सत्संगों में यह साफ कहा है कि जो भाई–बहन अपने निज धाम जाना चाहते हैं यानी परम आनन्द व परम शान्ति को पाना चाहते हैं तो वे इन वाणियों को पढ़–२ कर या अभ्यास कर–करके अपना पूरा जीवन व्यतीत कर दें तब भी बिना अगम के भेद के वे उस मंजिल पर नहीं पहुंच सकते। जैसे मैंने पहले कहा है कि साधन–अभ्यास से उनको आनन्द और सिद्धियां व शक्तियां तो बहुत मिलेगी और वे बड़े महात्मा भी कहलायेंगे, परन्तु साधन, योग, अभ्यास यह मंजिल नहीं है। यह तो मार्ग है।

एक दिन मैं कहीं सत्संग दे रहा था तो मैंने कहा कि भाई, जब तक ज्ञान की अग्नि से अपने सभी प्रारब्ध, संचित व क्रियमान् कर्मों को जला कर भस्म नहीं करोगे, तब तक यह आवागमन नहीं छूटेगा। वैसे यह बात मैंने आपको कई बार पहले भी बताई है, परन्तु आप सुनते ही नहीं हैं। तब एक M.Sc. की

विद्यार्थी ने खड़ी होकर कहा कि आज एक बार फिर वही विधि बता दें जिसमें सभी कर्मों को ज्ञान की अग्नि से जलाकर भस्म किया जा सके। तब मैंने उसे कहा कि बेटी, यह शिक्षा अभी तेरे लिए नहीं है। जो आवागमन से डरते हैं और जिन्हें यह दुनिया अच्छी नहीं लगती, उनके लिए मैं यह बात कह रहा हूं। तेरे लिए और ज्ञान है। भाव यह है कि सबके लिए एक बात नहीं हो सकती।

मैंने अपने सत्संगों में इस लोक के जीवन को स्वर्ग जैसा बनाकर सुन्दर और सुखमय जीवन बिताने की बात अधिक की है, क्योंकि मैंने खुद ऐसा जीवन जिया है। यह बात ठीक है कि परलोक का भी जीवन है। और सदा इस शरीर में रहना भी नहीं है, एक दिन तो यह शरीर सभी को छोड़कर जाना है। परन्तु यह समय अब हमारे हाथ में है। इसलिए मैं अधिकतर इस लोक में सुख, आनन्द व प्रसन्नता से जीवन जीने की कला अधिक बताता हूं और बहुत लोक कहते हैं कि इससे उनके जीवन में बहुत सुधार आया है। वस्तुतः यह लोक संकल्प का है। मनुष्य को इस बात का ज्ञान नहीं है कि उसके विचारों के अनुसार ही उसकी यह दुनिया बन जाती है। यदि उसको इस बात का ज्ञान हो जाए तो जो भी वस्तु वह चाहे, उसको मिल सकती है। गुरू और देता क्या है? वह मनुष्य को ध्यान की विधि बताकर यह समझा देता है कि भाई। जो भी तू चाहता है, वह विचार लेकर ध्यान में बैठ जाया कर, इससे जल्दी ही तेरा काम बन जायेगा।

यह नाम वाली बात तो आगे की है। परन्तु खेल सब ध्यान, विश्वास और प्रेम का है। मैंने यह रहस्य अपने गुरू जी से समझा हुआ है और यही बात मैं सत्संगों में बताता हूं। यह नहीं कि मेरे में कोई सिद्धि–शक्ति है, परन्तु मैं मनुष्य की जैसी प्रकति देखता हूं, उसको उसी के अनुसार रहस्य समझा देता हूं और उसके विचार आशावादी बन जाते हैं, निराशावादी विचार वह छोड़ देता है। यह सब खेल ही यहां विचारों का है। अब

जो परलोक की बात है, वह बहुत सहज है। उसका अनुभव भी अभी इसी जीवन में कर लो, मरने के बाद की बात और है। उसके योग–साधन इस लोक के साधन से अलग हैं। परन्तु मनुष्य जब इस लोक में सन्तुष्ट हो, तब उसका आगे का साधन बनता है। और ऐसे आदमी बहुत कम हैं जो केवल परलोक की इच्छा रखते हों। मेरे अनुभव में जितने लोग सत्संग में आते हैं, हजारों में से एक दो को छोड़कर, सब इस लोक में दुखी होते हैं, परलोक की कोई बात ही नहीं करता। परन्तु महापुरूष जो आजकल सत्संग कराते हैं, वे सब परलोक की ही बात अधिक करते हैं और पुरानी कथाएं सुनाते हैं। कहने का भाव यह है कि दर्द तो है मनुष्य के सिर में और वे पट्टी बान्धते हैं पैर में। मनुष्य दुखी यहां इस लोक में है, अतः मुख्य बात उसको यह बताई जाए कि वह यहां सुखी कैसे हो सकता है? उसको संकल्प, विचार व विश्वास वाली बात समझाई जाए, क्योंकि इस लोक का परलोक की विधि के साथ कोई ताल–मेल नहीं है। परलोक का योग है सब तरह के संकल्प,विचार छोड़ने का। यह सब प्रकार की इच्छा, चाह व कामनाओं के त्याग का मार्ग है। अर्थात् यह योग तभी बनेगा जब मनुष्य के मन में किसी भी तरह की कोई चाह या वासना नहीं होगी और उसका मन स्थिर हो जायेगा। जैसे कहा है –

तन थिर मन थिर, सुरत निरत थिर होए।
कहें कबीर वा पल को, कल्प सके न कोए।।

कहने का भाव यह है कि परलोक का मार्ग त्याग का है और यह लोक भोग का है। यहां भोग का अर्थ स्त्री–पुरूष का कामांग ही नहीं है, अपितु जो भी हम अपनी खुशी या शौक के लिए खाना,पीना, देखना, सुनना, नाचना, गाना आदि करते हैं, यह सब भोग में शामिल है। पहला समय कुछ और था परन्तु अब समय बदल गया है। समय के अनुसार यहां सब कुछ बदलता है। अतः धर्म के योग, साधन व विधि–विधान भी बदलते रहते हैं। अध्यात्म ज्ञान जो एक प्राकतिक विज्ञान था, वह अब

केवल कथा–कीर्तन और पुराने समय की बातों को दोहराने तक रह गया है। हमारा देश जो विश्व में अध्यात्म का गुरू था, आज वह कर्जे में डूबा हुआ है और देश– विदेशों से भीख मांग रहा है। अगर वास्तव में कोई देश या मनुष्य आध्यात्मिक है तो उसके ऊपर धन की वर्षा होनी चाहिए, क्योंकि उसकी इच्छा शक्ति इतनी बलवान होती है कि जो भी वह चाहता है, वैसा ही हो जाता है। मैंने इस बात का अनुभव किया है? 1956 से इस राम–नाम या सार–शब्द का अनुभव करके 1962 से यह सत्संग देता आ रहा हूं। मेरे साथ बहुत से चमत्कार घटित हुए और जो लोग मेरा सत्संग सुनते हैं व विश्वास रखते हैं, उनके साथ रोज नए–२ चमत्कार व सिद्धियों की घटनाएं घटती आ रही हैं। मेरा रूप लोगों में प्रकट होकर उनकी तरह–२ से सहायता करता है और मुझे इस बात का पता तक नहीं होता तो इस बात से यह स्पष्ट है कि हर मनुष्य के मन में परमात्मा की शक्ति अंश रूप में मौजूद है। जब मनुष्य सच्चे मन से अपने इष्ट के रूप में उसे याद करता है तो उसका मन ही उस इष्ट के रूप में प्रकट होकर उसकी सहायता करता है। यह बात सदा से ही ऐसी थी, परन्तु पहले के महापुरूषों ने इस रहस्य को किसी कारण से नहीं खोला होगा और इस रहस्य के कारण ही विश्व में धर्म के नाम पर बहुत से सम्प्रदाय बन गए और मनुष्य जाति अलग–२ बंट गई। कोई हिन्दू, कोई मुस्लमान तो कोई ईसाई बन गया। परन्तु आज के इस वैज्ञानिक व बौद्धिक युग में मनुष्य इस रहस्य को जानना चाहता है। होशियारपुर में मानवता मन्दिर के संस्थापक मेरे गुरू पण्डित फकीरचन्द जी महाराज ऐसे पहले महापुरूष हुए हैं, जिन्होंने अपने सत्संगों में इस रहस्य को खोला है। उनका साहित्य इस धर्म के रहस्य से भरा हुआ है और दूसरा यही रहस्य मैं अपने सत्संगों में स्पष्ट बताता हूं और मेरे पास अब हाजिर इसके बहुत से प्रमाण हैं। लोग मेरे से प्रसाद ले जाते हैं और उनके काम हो जाते हैं जबकि मैं जानता हूं कि मेरे में कोई शक्ति नहीं है, शक्ति प्रसाद

ले जाने वाले के मन और विश्वास में है और नाम मेरा हो जाता है। मेरे द्वारा ऐसा स्पष्ट कहने से कुछ बुद्धिमान् सज्जन मुझे यह कहते हैं कि महाराज जी, इससे तो लोगों का विश्वास टूटता है तो मैं यही कहता हूं कि –

साधु ऐसा चाहिए, जो साची कहे बनाय।
या टूटे या जुड़े रहे, सच बिना भ्रम न जाय।

अर्थात् मैं लोगों को भ्रम में नहीं रखना चाहता जब मैं जानता हूं कि मेरे में कोई सिद्धि शक्ति नहीं है तो मैं उसका झूठा श्रेय अपने सिर नहीं लेना चाहता और यदि मेरे में यह सिद्धि शक्ति है तो मुझे इसका ज्ञान नहीं हैं। मैंने कई महात्माओं का अन्त बुरा देखा है इसलिए मैं उस मालिक से डरता हूं और आपको सच्ची बात कहता हूं। दूसरा मुझे शिष्य बनाने व लोगों से धन लेने का कोई लालच नहीं है। मुझे 8000/- रू० पैंशन मिलती है, इसी में अपना गुजारा करता हूं और शिष्य किसी को बनाता नहीं हूं। बस यह एक डा० कमला मेरी शिष्या बनी हुई है। यह शब्द–प्रकाश की अनुभवी है। मैं चाहता हूं कि यह स्त्रियों के लिए यह काम करे क्योंकि मेरे गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी कहते थे कि स्त्री की गुरू स्त्री ही होनी चाहिए।

तो आप समझ गए होंगे कि अध्यात्म–ज्ञान प्राकतिक विज्ञान है। योगी इसका प्रयोग अपने मन और आत्मा के साथ करता है और वैज्ञानिक किसी वस्तु के साथ करता है। अतः आजकल जो अध्यात्म को केवल कथा–कीर्तन ही समझा जा रहा है, यह सत्य नहीं है, क्योंकि यह अनुभव का विषय है। वैसे कथा–कीर्तन से आरम्भ के दर्जे पर संस्कार दिए जाते हैं, और मन को टिकाने के लिए ये किसी हद तक ठीक भी है, परन्तु अध्यात्म की मंजिल तो इन गाने, बजाने, कथा–कीर्तन, योग– साधन के अभ्यास से आगे हैं। यह सब अपने–२ स्थान पर भिन्न–२ प्रकति वाले सज्जनों के लिए आरम्भ में कुछ लाभ की बात हो सकती है। जैसे शिक्षा में पहाड़े याद करना हिसाब–किताब करने में लाभ की बात हो सकती है, परन्तु

केवल पहाड़े ही याद करना सब कुछ नहीं है, तो जैसे पीछे शब्द में कहा है –

''गुरू ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भरम का।''

इसका अर्थ यह है कि योग, साधन, अभ्यास के बाद गुरू से अगम का भेद लेकर आगे का साधन सहज में सुरत–शब्द का है। जैसे कहा है –

''गुरू शब्द को कीजिए, बहुतक गुरू लाबार।
अपने-२ स्वाद में ठौर-२ बट मार।।''

इस प्रकार जब तक जीवन है, केवल यह अन्तिम साधन है, जिससे हर समय समता और परम शान्ति बनी रहती है। जब प्रारब्ध समाप्त हो जाते हैं तब यह सुरत उस शब्द रूपी समुद्र में मिल जाती है। यह आखिरी बात मैं अपने अनुमान से कह रहा हूं। इसका अनुभव अभी बाकी है।

तो अनुभवी महापुरूष अपने सत्संग में इस जीव के सब भ्रम व शंका दूर कर देता है जैसे कहा है –

''गुरू मिले तो भ्रम नसाहिं।'' (कबीर)

''गुरू सुआ जेहि पंथ दिखावा।'' (नानक)

''संशय काल शरीर में, जारि किए सब धूर।
काल से बांचे दास जन, जिन पर दयाल हजूर।।''

यह दयाल हजूर जीवित, पूर्ण विवेकी और अनुभवी महापुरूष हैं, जिसकी कपा से जीव को रहस्य समझ में आ जाता है। कोई पिछला अवतार, गुरू, पीर, देवी, देवता इस मनुष्य को ज्ञान, समझ नहीं दे सकता है। मनुष्य ईश्वर या परमात्मा की चर्चा करता आ रहा है, परन्तु वह एक अनुपम शक्ति है। यहां पर तो मनुष्य ही मनुष्य को ज्ञान दे सकता है। यह ग्रन्थ भी मनुष्य ने ही लिखे हैं। परमात्मा अंश रूप में मनुष्य के मन में हाजिर है। जिसने खुद ने उस परमात्मा का अनुभव किया हो, वहीं तो दूसरे को अनुभव करा सकता है। यदि यह बात मनुष्य को ठीक से समझ आ जाए तो वह इन देवी–देवताओं की मूर्तियों व पिछले अवतारों को छोड़कर सही रास्ता ले सकता है।

तो मैं जो अन्तिम मंजिल के भेद की बात बताना चाहता हूं, वह यही है कि जब मेरा रूप विश्वासी सज्जनों में जगह–२ प्रकट होकर उनका काम कर देता है और मुझे कुछ मालूम नहीं होता तो ध्यान योग करने वालों को जब यह रहस्य समझ में आ जायेगा तब वह इन रूप, रंग, चमत्कार, नजारे व विचारों को छोड़कर आगे खोज करेगा। यानी गुरू, पीर, राम, कष्ण आदि के रूप को सच न मानकर आगे सच्चाई को जानने की इच्छा करेगा। तब आगे उसे प्रकाश और शब्द का अनुभव होगा। परन्तु याद रहे प्रकाश का अनुभव उन्हीं साधकों को होगा, जिनका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है। परन्तु शब्द जो आखिरी मंजिल का रास्ता है, जीवनधारा है और जिसे महापुरूषों ने राम–नाम, सतनाम या और बहुत से नामों से पुकारा है, वह उसे मिल जायेगा और उसका अनुभव करते हुए उसके सब योग सहज में ही सध जायेंगे तथा समता बनी रहेगी। तो अगम का भेद क्या हुआ? वह यह कि योग साधन में ये जितने भी रंग, रूप, नजारे, लोक–लोकान्तर नजर आते हैं, ये सत्य नहीं हैं, केवल भासते हैं। यह सब खेल काल और माया का है। अतः मनुष्य का कल्याण तो तभी होगा जब वह किसी महापुरूष से अगम का भेद लेकर आगे जायेगा। यह मेरा अनुभव है, कोई दावा नहीं । जैसे कहा है –

''दादू दावा मत कर, बिन दावे दिन काट।
बहुत ही सौदा कर गए, इस पंसारी की हाट।।''

वास्तव में परमात्मा पहले भी इस जीव को सच्चाई व अगम का भेद देने के लिए आता रहा है। परन्तु लोग उनकी बातों को पुस्तकों में लिखी बातों के साथ मिलाते रहे। वो यह नहीं जानते कि समय के साथ धर्म के ढंग या विधि भी बदल जाते हैं। अतः ऐसे महापुरूषों की बात सुनना तो दूर, अपितु लोगों ने उन्हें जान से ही मार दिया, क्योंकि उनका ज्ञान ग्रन्थों में लिखे ज्ञान से मेल नहीं खाता था। जैसे सुकरात, ईसामसीह, स्वामी दयानन्द, रजनीश आदि। शायद इसी कारण से यह धर्म

की बात रहस्य मे चलती आ रही है। जैसे कहा है –

''साच कहूं तो मार सी, यह तुरकानी जोर।
बात करूं परलोक की, कह गह पकड़े चोर।''

अर्थात् उस समय सच्चाई बताने में भय था, क्योंकि तब देश इसलाम के प्रभाव में था। परन्तु आज हमारा देश स्वतन्त्र है और सभी को धर्म के विषय में अपना अनुभव बताने का अधिकार है। वेसे भी हमारा देश धर्म के विषय में सदा से ही उदार विचार रखता आया है।

मैं आजकल जहां भी सत्संग देता हूं, लगभग सभी गुरूओं के शिष्य मेरे सत्संग का लाभ उठाते हैं। जब मैं उनको शरीर, मन व आत्मा के विषय में कुछ बताता हूं तो वह सुख व शान्ति को महसूस करते हैं। परन्तु उनकी यह हालत कुछ समय के बाद बदल जाती है, क्योंकि हर समय तो उनके योग–अभ्यास व नाम की कमाई से ही यह खुशी, उमंग, आनन्द व प्रेमभाव बना रह सकता है। यह तो संग का लाभ होता है या विकिरणधारा (Law of Radiation) का नियम काम करता है। अध्यात्म ज्ञान तो जो खुद का अनुभव है, वही सत्य है। जैसे कहा है –

''जब तक न देखो अपने नैना।
तब तक न मानो गुरू के बैना।।''

अतः हम किसी का खण्डन नहीं कर सकते। महापुरूषों ने मनुष्य की प्रकति, संस्कार को देखकर उनको जो भी विधि बताई थी, वह उस समय और उस मनुष्य के लिए ठीक रही होगी। परन्तु अध्यात्म मन, आत्मा और सुरत के अनुभव की बात है, जो विशेष समझ, विवेक, अनुभूति व ज्ञान का विषय है। मैं यह अगम का भेद अपने सत्संगों में बहुत सादी भाषा में बताता आ रहा हूं, संस्कत के श्लोक या शब्द भजन में नहीं, क्योंकि मुझे शास्त्रों का ज्ञान नहीं है। यह तो मेरा अपना अनुभव है जिस पर लोग विश्वास ही नहीं करते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ –

''सुनते नहीं यह दुनिया के गाफिल मेरा कलाम।
बेदार होकर कहता हूं, ताबीर ख्वाब की।।''

(22)

अध्यात्म ज्ञान का सार

मनुष्य की आदिकाल से अध्यात्म ज्ञान में रूचि रही है। यह एक प्राकतिक विज्ञान है। इसका अनुभव मनुष्य को परम शान्ति और परम आनन्द देता है। हमारे ऋषियों ने जीवन को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष रूप चार पुरूषार्थो में बांटा था। अर्थात् मनुष्य यह सब करते हुए ही धार्मिक बने। यदि वह इनमें से किसी एक अंग को ही सब कुछ मानकर उस पर ध्यान देता है तो यह अनुचित है जैसे हमारे भारत वर्ष में ज्यादातर महात्मा उसी को समझा जाता है जो खुद कमाता नहीं है, घर–बार छोड़ देता है और जो आश्रम बना कर शिष्यों की कमाई पर अपना जीवन–निर्वाह करता है। यह कोई अध्यात्म ज्ञान की बात नहीं है। वास्तव में आध्यात्मिक मनुष्य वह है जो खुद कमा कर खाता है और अपने आत्मिक ज्ञान को बिना मुआवजा लिए मानवता को बांटता है। उदाहरण के रूप में सन्त कबीर, रैदास आदि ऐसे सन्त हुए हैं, जिन्होंने खुद अपनी रोजी–रोटी कमाते हुए इस ज्ञान को बांटा है।

फिर धर्म क्या हुआ? प्यारे सज्जनों। इस मनुष्य में चार तत्व मिल कर काम कर रहे हैं – शरीर, मन, आत्मा और सुरत। इन चारों के अलग–२ नियम या धर्म हैं और चारों की बनावट भी चार अलग–२ तत्वों से है। चारों के चार ही तरह के भोजन हैं। शरीर की खुराक भोजन है, मन की खुराक संकल्प, विचार या संस्कार हैं। आत्मा की खुराक आनन्द और सुरत की शान्ति है। फिर परमात्मा के भी चार ही दर्जे कहे हैं –

''एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट-२ में बैठा।
एक राम का सकल पसारा, एक राम सब ही से न्यारा।।''

अर्थात् जिस राम को दशरथ का बेटा कहा है, उसको इष्ट मानकर दोनों आंखों के बीच ध्यान करने से इच्छा शक्ति

बढ़ जाती है और मनुष्य जो भी इच्छा करता है, उसकी इच्छा बहुत जल्दी पूरी हो जाती है। भाव यह है कि राम, मोहम्मद, ईसामसीह, बाला जी या किसी अन्य देवी–देवता में से किसी एक रूप को इष्ट मानकर, उसका ध्यान करने से मनुष्य की इच्छा बहुत जल्दी पूरी हो जाती है। परन्तु यह है मानसिक योग या मन की ही पूजा। यह मन के मण्डल की भक्ति है। इसमें विश्वास काम करता है। यदि मन पवित्र है और ध्यान बन जाता है तो इष्ट का रूप प्रकट होकर होने वाली बात पहले ही बता देता है परन्तु यहां बाहर से कुछ नहीं आता है, यह मनुष्य का मन ही है, जो इष्ट का रूप बना लेता है। अधिकतर लोग मानसिक योगी हैं। परन्तु इस योग में शिव–संकल्प का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। इसलिए यह किसी अनुभवी की देख–रेख में किया जाना चाहिए। यही कारण है कि ऋषि–मुनियों ने किसी जीवित, पूर्ण अनुभवी महापुरूष को ही इष्ट बनाने के लिए कहा है अर्थात् मनुष्य का गुरू मनुष्य ही होना ठीक है। इसीलिए गुरू का दर्जा सबसे ऊंचा माना गया है। अतः उसे परमात्मा मानकर, उसका ध्यान करने और सत्संग सुनने से मनुष्य के सब भ्रम व शंकाएं दूर हो जाती हैं। जैसे कहा है –

''गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु, गुरूर्देव महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रह्म, तस्मैं श्री गुरवे नमः।।

''ध्यान मूलं गुरू मूर्ति, पूजा मूलं गुरू पदम्।
मन्त्र मूलं गुरू वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरू कपा।।

तो 'एक राम दशरथ का बेटा' इसका अर्थ है मनुष्य रूप में किसी महापुरूष को राम मान कर पूजना। यह गुरू भक्ति है। इसमें गुरू के सत्संग से आपको ज्ञान मिलेगा और गुरू के द्वारा बताए गए ढंग से ध्यान करने पर आपकी मनोकामना पूर्ण होगी और सुन्दर–२ सोचने से आपकी दुनिया सुन्दर बन जायेगी।

दूसरा राम हर मनुष्य के घट–२ में बैठा है, उसकी बात यह है कि परमात्मा अंश रूप में हर मनुष्य के मन में है और वह है आत्म स्वरूप यानी ज्योति या प्रकाश रूप। जितना भी आनन्द हम खाने, पीने, देखने, सुनने या अपनी जीवन लीला में अनुभव करते हैं, वह सब आत्मा का आनन्द है। आत्मा हमारे मन पर प्रभाव डालता है, मन सब इन्द्रियों पर प्रभाव डालता है, जिससे हम आनन्द महसूस करते हैं और योगी जो अपने अन्दर समाधि में प्रकाश के अनुभव का आनन्द लेते हैं, वह भी यही आनन्द है।

तीसरा राम, जिसका सकल पसारा कहा है, वह ब्रह्म है। अपने सूर्य से ऊपर एक बहुत बड़ा सूर्य है, उसी का पसारा सब जगह व्याप्त है। ये सब सूर्य, चन्द्र, तारा, लोक–लोकान्तर इसके ही प्रकाश से प्रकाशित हैं।

और जो एक राम सबसे अलग कहा है, उसका कोई योगी, ध्यानी, सन्त, महात्मा अभी तक पार नहीं पा सके हैं। कहते हैं जो भी उसका अनुभव करने जाता है, वह उसमें ही लीन हो जाता है। जैसे बून्द समुद्र में मिलकर उसी का रूप बन जाती है।

इस प्रकार ये शरीर, मन और आत्मा के आनन्द के दर्जे हैं। यह सब अध्यात्म के दर्जे हैं। इसी में यह हठयोग जैसे धूप, वर्षा, अग्नि आदि को सहन कर तप करना, प्राणायाम योग जैसे प्राणों को साध कर विभिन्न चमत्कार करना, मानसिक योग जैसे इष्ट के प्रति प्रेम, विश्वास और भक्ति से सफलता, सिद्धि प्राप्त करना आदि सब आ जाता है। परन्तु अध्यात्म की मंजिल इनसे आगे है। इस मंजिल में कोई आनन्द या बेआनन्दी नहीं है, केवल शान्ति है जो हर समय रहने–वाली है। यह सुरत–शब्द योग के साधन से आती है। जिसे सुरत–शब्द का अभ्यास करने वाले महापुरूषों ने अनुभव किया है और उन्होंने ही अन्त में कहा है – **''ऊं शान्ति शान्ति शान्ति''।** परन्तु मेरा अनुभव अभी तक यह है कि शरीर में रहते हुए बाहर के प्रभाव मनुष्य पर प्रभाव डालते हैं। हो सकता है यह प्रभाव ज्यादा समय तक न रहे

परन्तु कुछ समय जरूर प्रभाव डालता है परन्तु फिर सचेत होकर समस्थिति में टिकाव हो जाता हैं। क्योंकि मेरे साथ कभी–२ ऐसा होता है, परन्तु यह तो मेरा अपना अनुभव है। हो सकता है सुरत–शब्द का कोई ऐसा साधक हो जिस पर यह बाहर का प्रभाव बिल्कुल न होता हो। परन्तु मेरे अनुभव में यह बात नहीं आई है। जैसे कहा है –

''सन्त जब लग भय करे, जब लग पिंज्जर साथ।''

पहले इस अध्यात्म या आत्म ज्ञान के अनुभव के लिए कुण्डली योग सिखाया जाता था। यानी शरीर के चक्रों से साधन शुरू किया जाता था। जैसे गुदा चक्र, इन्द्री चक्र, नाभि चक्र, हृदय चक्र, कण्ठ चक्र व आज्ञा चक्र। इन सब स्थानों के साधन से सिद्धियां होती थी, परन्तु इससे साधक एक जन्म में आगे की आध्यात्मिक मंजिल तक नहीं पहुंच सकता था। सन्तों ने यह शरीर के साधन न करा कर सीधा आज्ञा चक्र या सहस्रदल कंवल से इस अध्यात्म का अनुभव कराना शुरू कर दिया। सहस्राकार से सतलोक तक के जो स्थान हैं, यह भिन्न–२ प्रकति वाले साधकों के लिए है और यहां का अनुभव भी मनुष्य की भिन्न–२ प्रकति और संस्कारों के अनुसार अलग–२ हैं। जैसे सहस्राकार के स्थान पर इष्ट का ध्यान बनने से इच्छा शक्ति बलवान हो जाती है और सिद्धियां बहुत मिलती हैं। त्रिकुटी या ऊं के स्थान पर साधक जो भी ज्ञान इस लोक या परलोक के विषय में जानना चाहे, वह जान सकता है। इससे ऊपर सुन्न व महासुन्न के स्थान पर मन काम नहीं करता। यहां विचार समाप्त हो जाते हैं और मस्ती, खुशी बनी रहती है इससे ऊपर आनन्द का स्थान है। यह सब सूक्ष्म लोक के साधन हैं। इन्हें जीवित वक्त गुरू से ही जाना जाए। मन मर्जी से साधन करने से दिमाग का सन्तुलन बिगड़ने का भय बना रहता है। वक्त का अनुभवी सन्त सतगुरू जानता है कि जीव लोक या परलोक कहां का अधिकारी है? अतः वह उसकी योग्यता और संस्कार देखकर ही उसे ज्ञान देता है, जिससे उसे

लाभ होता है। और जो साधक ध्यान में जो भी अनुभव करता है, वह उसके संस्कार और प्रकति के अनुसार ठीक है। यह उसकी खोज (Research) है। परन्तु यह कहना कि बस जो मैंने अनुभव किया है, यह ही सत्य है, यह बात ठीक नहीं है। यह अध्यात्म परम आनन्द और परम शान्ति का विषय है। इस प्रकार मनुष्य के अन्दर एडी से चोटी तक यह सब खेल इस सुरत या जीवनधारा का है। सब तरह से शरीर, मन व आत्मा से ऋद्धि, सिद्धि, शक्ति व नए–२ ज्ञान का अनुभव करते हुए मनुष्य इस धर्म, कर्म व अध्यात्म के इस रहस्य को जानने तक पहुंचा है कि ये जो भी चमत्कार व सिद्धियां घटित होती हैं, जिन्हें मनुष्य आज तक बाहर के किसी इष्ट या देवी–देवता की करामात समझता आ रहा था, वह सब उसके मन की शक्ति, आस–विश्वास का फल है। जैसे कहा है –

''मन गोबिन्द मन गोरखा, मन ओघट मन जोये।
जो मन राखे जतन से, सो ही कर्त्ता होए।।''

जिसके हृदय में राम नाम, सतनाम, नाद, अनहद, उद्गीत जिसके बहुत से नाम महापुरूषों ने रखें हुए हैं, यदि गुरू कपा से खुल जाता है, ऐसा मनुष्य लाखों, करोड़ों में कोई एक होता है। आजकल हर रोज जो टेलिविजन में महापुरूषों की भीड़ दिखाई पड़ती है, वह उनमें से अलग तरह का महात्मा होता है। उसको कोई साधन, ध्यान, समाधि लगाने की आवश्यकता ही नहीं होती। वह सहज में जीवन के हर क्षेत्र में हर काम करते हुए, जीवन लीला करते हुए मस्ती व बेफिकरी से परम सुख व परम शान्ति का जीवन व्यतीत करता है। जैसे ब्रह्मानन्द ने कहा है –

नारायण जिनके हृदय में, सो कुछ कर्म करे न करे रे।
नाव मिली जिनको जल माहिं, बाहों से नीर तरे न तरे रे।।
पारस मणि जिनके घर माहिं, सो धन सिंच धरे न धरे।
सूरज को प्रकाश भयो तब, दीप की ज्योत जरे न जरे रे।

वैसे आत्मा–परमात्मा के विषय में जो भी साधु जहां और जिस दर्जे पर साधन में रत है वे सभी भले हैं। परन्तु जो सुरत–शब्द का विवेकी और अनुभवी है, वह सबसे ऊंचा है। जैसे –

साध हमारे सभी भले, अपनी-२ ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, सबमें है सिरमौर।। (कबीर)

संक्षेप में अध्यात्म ज्ञान का सार मेरी समझ के अनुसार यह है कि मनुष्य किसी जीवित अनुभवी, पूर्ण विवेकी महापुरूष को गुरू धारण कर, उसके दर्शन, वचन व संग का लाभ उठाते हुए तथा उसके वचनों के अनुसार अमल करते हुए, दुनिया के सब काम करते हुए, भौतिक सुविधाओं का लाभ उठाते हुए अपने इस जीवन को सुन्दर बनाकर उस परम तत्व का या आत्म ज्ञान का अनुभव कर सकता है। अर्थात् इस दुनिया में रहकर सब काम करते हुए, दुनियावी चुनौतियों का सामना करते हुए आत्म ज्ञान का अनुभव करना ही इस समय का धर्म है। जैसे कष्ण भक्त रसखान ने कहा है –

सुनिए सबकी कछु न कहिए, रहिए एही भव सागर में।
रसखानी गोबिन्द ही यूं भजिए, जिम नागर को चित गागर में।।

सारांश

प्यारे पाठकों। मैं तो आध्यात्मिक मनुष्य हूँ। इस पुस्तक में मनुष्य का कर्त्तव्य, धर्म व आत्मिक अनुभूति के विषय में लिखने का यत्न किया है। मेरा किसी भी प्यारे सज्जन का मन दुखाने का भाव नहीं है इस संसार में हम सब ही मनुष्य अपने–२ संस्कारों के अनुसार कमजोरियों से भरे हुए हैं, किसी में कुछ कमजोरी तो किसी में कुछ। जैसे कहा है –

जब तू होता है किसी शक्स पर अकुंशनुमा।
अंगुलियां तीन झुकी रहती हैं तेरी जानम।।

भाव यह है कि जब हम किसी दूसरे के अवगुण या दोष बताते हैं तब एक उंगली उसकी तरफ करते हैं और तीन उंगली मुट्ठी बन्द होने पर हमारी तरफ होती हैं। यानी हमारे अन्दर तीन गुणा ज्यादा अवगुण हैं फिर कहा है –

जब न थी अपने हाल की खबर।
रहे देखते औरों के एबो हूनर।।
जब गई अपनी गुनाहों पर नजर।
तो निगाहों में कोई बुरा न रहा।।

प्यारे सज्जनों। मेरी नजर में कोई मनुष्य बुरा नहीं है। हर मनुष्य अपने–२ मन पर पड़े हुए संस्कारों के अनुसार भला या बुरा काम करने को मजबूर है। हम दुनियादार हैं। इसलिए अपनी कमजोरी तो देखते नहीं, परन्तु दूसरों की कमजोरी की चर्चा अधिक करते हैं। कुछ सज्जन जो मेरे से प्रेमभाव रखते हैं, उनकी इच्छा है कि मैं समाज में विशेष काम करने वाले सज्जनों के कर्त्तव्य और धर्म पर प्रकाश डालूं। यह सज्जन समाज का भला चाहते हैं, इसलिए यह जो भी मैं कर्त्तव्य, धर्म व आत्मिक अनुभूति के नाम से अपनी समझ व योग्यतानुसार लिख रहा हूं, इसमें मेरी नीयत यह है कि हम अपने कमजोर संस्कारों को छोड़े और सुन्दर संस्कार ग्रहण करके अपना और मनुष्य समाज का कल्याण करें।

समाज में आप जहां भी और जिस पद पर काम कर रहे हैं, आपका अपना जीवन सुख, आनन्द व शान्ति का हो और मनुष्य जाति को आपके काम से सुख शान्ति मिले। जो कर्त्तव्य और धर्म के भाव से लिखा है, यह बात उन्हीं सज्जनों के लिए संकेत है, जिनमें यह कमजोरियां हैं। सबके लिए एक ही बात नहीं होती है। बहुत से ऐसे सज्जन भी हैं, जिनके बहुत सुन्दर संस्कार हैं।

यह जो कुछ मनुष्य अच्छा या बुरा कर रहा है, असल में

उसके संस्कार या कर्म ही ऐसे हैं कि वह अपना कर्म भोगने को मजबूर है, परन्तु उसके कर्म से दूसरों को जो दुख मिलता है, यह बात ठीक नहीं है। इसलिए मनुष्य समझ कर अपने अशुभ कर्म या संस्कारों को शुभ बनाए व शिव संकल्प बनाए।

मुझे किसी भी सज्जन से कोई नफरत नहीं है और न मैं किसी के अवगुण देखता हूं क्योंकि मैं अध्यात्म ज्ञान की अनुभूति से यह समझ गया हूं कि मनुष्य के मन पर जैसे संस्कार पड़े हुए हैं, वैसा करने को वह मजबूर है। यह लोक संकल्प यानी विचारों का है, और मन पर पड़े हुए संस्कार या दूसरी भाषा में इसे कर्म कह लो, भोगने का है। किसी के शुभ कर्म हों तो किसी महापुरूष की संगत में यह बात समझ कर अपने घटिया संस्कार छोड़ दें और अच्छे संस्कार ग्रहण करके जीवन को खुशमय, आनन्दमय, प्रेममय व शान्ति का बना ले। इसी ही विचार से कर्त्तव्य और धर्म के नाम से यह लेख लिख रहा हूं। कोई बात आपको अच्छी न लगे तो बुरा मत मानना। मेरा किसी का मन दुखाने का भाव नहीं है। मुझे आप सज्जनों से प्यार है और मैं आपका भला चाहता हूं कि यदि आपमें कर्त्तव्य पालन यानी अपनी डयूटी सही करने में कमजोर संस्कार हों तो उसको त्याग कर अच्छे सुन्दर संस्कार ग्रहण करके अपने मनुष्य जीवन का कल्याण करें। आपके मन में बहुत बड़ी शक्ति है।

यह कर्त्तव्य हमें पहले अपने माता–पिता व परिवार को सुख देने तथा उनकी सेवा से शुरू करना चाहिए और फिर इसका क्षेत्र अपनी योग्यतानुसार बढ़ाना चाहिए। फिर यह कल्याण का कार्य परिवार, जाति, बिरादरी, गांव, प्रान्त, देश और पूरी मनुष्य जाति का भला करने तक बढ़ जाता है। हम अपनी योग्यतानुसार समाज में जहां भी काम कर रहे हैं, ईमानदारी तथा अपनी समझ–बूझ से ऐसा करें कि हमको सुख, खुशी, उमंग व प्रसन्नता मिले और हमारे कर्त्तव्य में दूसरों को दुख तकलीफ या कष्ट देने की नीयत न हो।

मैने आपकी सेवा में अपने अनुभव के आधार पर टूटे–फूटे शब्दों में मनुष्य को कर्त्तव्य व धर्म के विषय में मार्ग दर्शन करने का प्रयास किया है। यदि इसमें कुछ कमी रह गई है तो विचार न करें, क्योंकि मैं कोई खुदा नहीं हूं, आप जैसा साधारण आदमी हूं।

राधास्वामी ।

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	प्रथम संस्करण	द्वितीय सं०	तृतीय सं०
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	---
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	---
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	---
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	---
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07	---
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 2/07	---
9.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	4000 प्रतियां 2/07	---
10.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	4000 प्रतियां 2/07	---
11.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	2000 प्रतियां 2/07	---